Chapter-5

पंचम अध्याय

प्रो. सुधीरकुमार सक्सेनाजी का विधीवत तबला वादन पध्दती में अपने विचार तथा शास्त्र पक्ष में योगदान :

५-१ तबला शास्त्र की प्ररिभाषा

५-२ आॅल इन्डिया रेडियो स्टेशन से प्रसारित प्रो. सुधीरकुमार सक्सेनाजी का तबले के घराने केबारे में चर्चा। इसका प्रसारण सभी प्रांतीय भाषाओं में अनुवादित हो कर उसी समय एक साथ प्रसारित हुआ था।

५-२-१ प्रो. सुधीरकुमार सक्सेनाजी का अहमदावाद, वडोदरा रेडियो स्टेशन से ता २-८-८८ रोज प्रसाररित तबले के अजराड़ा घराने का परिचय तथा उसकी वादन शैली।

५-३ The roll of rhythm in music

५-४ रियाज़ और तालीम के लिये अनुशासन

५-५ Prnciples of composition.

पंचम अध्याय

प्रो. सुधीरकुमार सक्सेनाजी का विधीवत तबला वादन पद्धती में अपने विचार तथा शास्त्र पक्ष में योगदान एवं तबला विषयक अन्य लेख।

५-१ तबला शास्त्र की परिभाषा

पेशकार :

सोलो तबला वादन में सर्व प्रथम जो रचना बजाते हैं उसे पेशकार कहते है। इस रचना में तबले पर बजाये जानेवाले सभी वर्णाक्षिरों को इकठ्ठा करते हैं और यह उलट,पलट (टेढ़ीमेढ़ी) रचना होने के कारण कायदे के हिसाब से लंबे होते है। पुरानी पध्दति से पेशकार कम लय में बजाया जाता है। क्योंकि हिन्दुस्तानी ताल वादन में कोई भी रचना की शुरुआत करने से पहले निश्चित बोलों के समुह को उंगलियों में चैतन्य एवं जागृतता और ताजगी लाने के लिये यह एक कलात्मक पध्दति है। कला की दृष्टिसे यह तैयारी दिखाने की एक पध्दति है यह कोई शारीरीक कसरत नहीं है।

पेशकार का अर्थ शब्द से ही स्पष्ट होता है कि पेश याने प्रस्तुतीकरण अथवा रसिक श्रोताओं के लिये कार्यक्रम के शुरुआत में बजायी जानेवाली प्रारंभिक रचना याने पेशकार। पेशकार का अर्थ प्रस्तुति, प्रस्तुतीकरण, मांडणी

ऐसा होता है। उत्तर प्रदेश के न्यायालयों में पेशकार यह शब्द वकील के आदेशानुसार कागज़ इकठ्ठा करने वाले को पेशकार कहते हैं। यहाँ भी प्राधान्य महत्व का होता है। पहले पेशकार के लिये फर्शबंधी यह शब्द का उपयोग होता था। फर्श याने जमीन का पृष्ठभाग ऐसा होता है और कलाकार अपने अंदाजित लय के साथ एकात्मक होता है और आगे के कार्यक्रम के लिये सिध्ध हो जाता है ओर उंगलियों में जान लाता है। इस तरीके से वह अपने कार्यक्रम का चढ़ाव आगे बढ़ाता है इसीलिए उसे 'फर्शबंधी' कहते है। ख्याल गायकी में हम लोग स्थायी, जमना ऐसे शब्दों का उपयोग करते है। स्थायी यह संपूर्ण गायन, वादन की सुरक्षा का एक आधार हैं। इसी लिये काफ़ी सालों से तबला बजाने की शुरुआत पेशकार के बिना बजानेवाला उस्तादों की दृष्टि में शंकास्पद होता था याने बजाने वाला अज्ञानी है ऐसा माना जाता।

पेशकार कायदा :

प्रत्येक कलाकार अपने घराने के अनुसार पेशकार के पीछे नीश्चित स्वरुप का बनाया हुआ एक कायदा बजाता है उसे हम पेशकार कायदा कहते हैं। इस प्रकार से प्रत्येक तबला वादक का बजाने का फर्क पता चलता है। हरेक कायदे अलग स्वरुप के होने के कारण यह मुलतः मुख्य बोलों के समूह होते हैं जो उसके रुप में होते है अर्थात वो पेशकार जैसे होते है।

ज्यादातर निश्चित स्वरुप का कायदा बजाने का नियम और शुध्दता (रीतिबध्दता) बजाते समय इसकी जरुर नहीं होती है। यह सिर्फ सुंदर रीत से और भिन्न स्वरुपसे भी दिखा सकते है। कारण पेशकार की रचना में ही तबले के सभी वर्णाक्षिर आ जाते है। हरेक पेशकार कायदे में दो लाइनें होती है। पहली लाइन सम से चालू हो कर खाली तक बजती है और दूसरी लाइन खाली से समतक बजती है। याने पूर्ण खंड की रचना एक लाइन में होती है परंतु इस कायदे में कुछ भिन्न स्वरुप भी प्रस्तुत किये जाते है। पेशकार कायदा दृत लय में बजाया जा सकता है। इसके विपरित पेशकार संथ गती का लगता है। पेशकार कायदा बोलों के लिये और बजाने की पध्दति से ही नहि, तो अलग,अलग घराने को प्रदर्शित करता है। इसमें कोइ भी नयी पध्दति नहीं हैं।

कायदा :

शब्द के उपर से ही हम समझ सकते है कि कायदा याने नियम अथवा निश्चित प्रणाली। जब अकेला तबला वादक वादन करता है तब वादक कायदा एक पध्दति से बजाता है। उसकी रचना मे दो पंक्तियां होती हैं। पहली सम से शुरु हो कर खाली पर समाप्त होती है और दूसरी खाली से शुरु हो कर सम पर समाप्त होती है। जो अक्षर वारंवार एक विशिष्ठ शैली

में प्रदर्शित होता है उसी अक्षर से उसी कायदे को नाम दिया जाता है। इसी पध्दति से अपने यहाँ तीट, तीरकीट, धीनगीन, धिरधिर के और स्मृति बढ़ाने के कायदे हैं। अर्थात एन मौके पर बजाते समय उसमें बदलाव किया जा सकता है। किंतु पलटा बजाते समय उसमें बंदी है। सर्जनशील वैविध्य दिखाने के लिये ऐसे किसी भी वर्णाक्षर का उपयोग होता नहीं है। क्योंकि वह मुख्य रचना में नहीं होता है। फिरसे पलटा बजाने के समय एक विशिष्ट क्रम संभालना पडता है। दो खंडो में वर्णाक्षिरों की जो जगह है उसका नाद एक जैसा नहीं होता है ,पहले पंक्ति का अंतिम शब्द (तींना कीना) और दूसरी के बोल (धिंनागीना) ऐसे होते हैं। अपने गुरुजनोने अनेक प्रकार के कायदे बनाये हैं इसमें कुछ द्वीस्त्र जाती, तिस्त्र जाती, चतुस्त्र जाती, कोई छोटे कायदे और बड़े भी होते है। जो मध्य लय में और दृत लय में बजाने के बाद सुनने में अच्छे लगते है।

रेला :

रेला कायदे जैसा ही लगता है उसकी लंबाई उतनी ही होती है कितुं लय अलगसी होती है, रेला अतिदृत लय में बजाया जाता है। विलंबित लय में सुनना अच्छा नहीं लगता। यह बजाने के लिये बहुत ही सरल है क्योंकि इसमें मुख्य रचना में एक ही बोल अनेक बार बजाया जाता है। यह दोनों

बाते ध्यान में लेते है और इसके गुणधर्म को ध्यान मे लेते हुऐ रेला यह समुद्र की लहरों जैसा हिलता है। रेला बजाने के लिये उंगलियोपर प्रभुत्व होना चाहिये। यह बजाने के लिये ज्यादा रियाज की जरुरत होती है, कयोंकि रेला ज्यादातर अतिदृत लय में बजाया जाता है। यह बजाते समय अलग बोलों का उपयोग इसमें समय के अनुसार किया जाता है। सोलो वादन में रेला बजाना जरुरी है, इसमें बजाते समय चपलता दिखाने के लिये उपयोग में आता है। साथ संगत में भी इसका उपयोग हो सकता है। जब सितार,सरोद बजाते समय झाला बजाते हैं तब तबला वादक रेला का आधार लेकर बजा सकता है और वो भी द्रुत लय चलती हो तब आराम से तबला वादक उसके साथ संगत कर सकता है। इस से यह ध्यान में आता है कि रेला बजाते समय नियमो का पालन करने की जरुरत नहिं है।

टुकड़ा :

टुकड़ा शब्द परसे उसका अर्थ स्पष्ट होता है कि टुकड़ा याने भाग, किंतु ताल की भाषा में सिर्फ इसका अर्थ भाग नहीं होता है। पखावज की लंबी परनों से बनाया गया भाग, जो सम से सम तक का होता है। इसमें पारंपारिक कला को मान देते हुऐ और उसकी इज्जत रखने वाले परनों के कुछ मृदु अक्षरों के समुह द्वारा शब्दरचना कर के एक छोटीसी रचना बनाते है जो ताल चक्र में आती है और उसका समापन तिहाई से करते है। तिहाई

याने समापन। टुकड़ा याने तिहाई का एक भाग ऐसा नहीं है। क्योंकि सभी टुकडों को पूर्णत्व प्राप्त है और अलग, अलग लय में बजाये जाते है और गायन वादन में उसका प्रभूत्व दिखाई देता है। टुकड़ा सोलो वादन और साथ संगत में उपयोगी होता है।

राजा महाराजाओं के जमाने में पखावज और तबले की जुगल बंदी की महफिल होती थी। इस जुगलबंदी में तबला वादक की कभी जीत नहीं होती थी। क्योंकि वह पखावज द्वारा बजाय जानेवाली परन के समान लंबी, सरबत्ती और टेढ़ीमेढ़ी रचनाऐ तबले पर नही बजा पाते थे।

पखावज की रचनाऐं खुब जोरसे, गमक की हैसीयत से बजायी जाती है। इसलिए वह बहुत प्रभावशाली होती है। तबले में दाँया की किनार द्वारा निर्माण (बजाये) जाने वाले कायदे सुमधूर, मीठे होते है, लेकिन पखावज जैसा प्रभाव उत्पन्न नही कर पाते। किंतु जो तबला वादक इस में पराजय मानने के लिये तैयार नही होते उन्होने एक तरकीब सोची, परन में से कई मृदु शब्दों को इकठ्ठा करके उन्हें बोलों के टुकडों में सजाकर अनेक सुंदर रचनाऐं बनायीं जो तबला वादक को बजाने के लिये आसान हो गयीं। तबला वादक तिहाई लेते समय बहुत चौकन्ना याने सजाग रहकर बजाते हैं और पखावज वादक भी इस तरह से उसे पकड कर बजाते है।

गत : इसका गति इस शब्द से निर्माण हुआ है। उसका अर्थ हलचल ऐसा होता है। और ऐसा भी कह सकते है कि गत यह शब्द गति का संक्षिप्त रुप है। तबला वादन में गत यह निश्चित स्वरुप में होती है और बोलो का स्वरुप दिखाने वाली रचना होती है जो एक समान सरखी गति में घुमती रहती है, किंतु यह तिहाई से समाप्त नहीं होती है। इसलिये इस में एनमौके पर बदलाव नहीं कर सकते है। इस लिये यह कायदा और रेले से अलग है। गत तबले के बोलों पर रचायी जाती है। यह पखावज के वर्णाक्षरों से अलग होती है और यहाँ किनार के बोलों का वर्चस्व ज्यादा होता है। काफी तबला वादक इसका उपयोग नहीं करते क्योंकि उनको गत और तुकडा इस में क्या फर्क होता है उसका पता नहीं होता है। पुराने पध्दति के वादन शैली में रचना की और ध्यान पूर्वक देखा जाय तो उस में क्या फर्क है उसका पता चलता है। गत यह शांतिसे निश्चित आमद लिए बिना और सम दिखाने की नयी पध्दति से, छोटे टुकडे जैसी रचना, अंतमें धीरेधीरे नजाकत से उतरते समय उसमें शोभा आती है। ताल उसके भरी के लिये और गतिके वैविध्य से नहीं, उसके लय के चलन से,ठहराव से,खंडो से लक्षणीय दिखता है।

---

१०५ साक्षात्कार प्रो सुधीरकुमार सक्सेनाजी दि २-१०-२००७, १२-१०-२००७

गत के प्रकार :

गत का हरेक प्रकार निराला है। द्वि पल्ली गत, त्रिपल्ली गत, चौपल्ली गत, पंचपाली गत, दो मुँह की गत।

त्रिपल्ली गत : इसमें एक समान बोल को तीन बार तीन अलग अलग जातिसे बजाया जाता है।

चौपल्ली गत : एक समान बोलों को चार बार अलग, अलग लय में वादन होता है।

पंचपल्ली गत : पांच बार पाँच अलग, अलग लय में वादन होता है। पाली का अर्थ मूल रचना का चक्र ऐसा होता है। बहुत कम तबला वादक दौपल्ली गत बजाते हैं। क्योंकि इस में एक समान बोलों के समूह को दो बार बजाया जाता है और साथ ही दो जाति के लय में बजाया जाता है इस लिये बहुत छोटा टुकड़ा तैयार होता है। इस लिये पूर्ण रचना की छटा उसमें दिखाई नही देती। पल्लीका उपयोग अनेक बार होता है क्योकि उसका अंत उसीतरह से होता है उसका बंधारण तिहाई जैसा होता है। दुपल्ली गतो की संख्या ऐसे तो कम है और बहुत कम तबला वादकों को उसकी पहचान है। और भी एक गत का प्रकार है। जीसे "दों मुँह की गत "कहते हैं। इसका अर्थ एक समान दो मुँहवाली रचना होता है। मांदा साँप के ऊपरसे उसकी रचना का

जन्म हुआ है। जिसे दोनों ओर से मुँह होता है और इसतरह के साप को दुमुँही ऐसा कहा जाता है।

सभी गतें सम पर नही आती यह योग्य नही है कोई सम से पहले आती है इसे असम गत कहा जाता है। यह भी गत जैसी ही होती है इसमें फरक इतना ही होता है कि जो तालके अंत में मात्रा पर आती है याने सम से पहले सिर्फ सिर हिला कर या हाँ कहके तात्कालिक सम दिखाई देते हैं। इस प्रकार की गते बहुत कम घरानो में है। इन दोनों बातों में आश्चर्य नहीं क्यों कि यह गत बहुत द्रुत लय में बजायी जाती है। क्योंकि गत के अंत की जगह और सम इनके अंदर की रिक्त जगह को अंतर भरने का होता है यह अंतर जो कम लय में नहीं हुआ तो श्रोताओं को सम की कल्पना करना कठिन होता है। गत की अंत समय पर सम दिखाने की योजना सहज रीत से नही दिखा पाते और एक मात्रा कम दिखाई देती है। उसी हिसाब से गत की जोडनी इसतरह से होनी चाहिये कि जो स्वयं, के गुणों द्वारा सम दिशा में बढ़कर की जा सके। तभी श्रोताओं को पता चल सकता है कि सच्ची सम जानबुझ कर बतायी नहीं जाती है।

तिहाई :

यह ताल रचना की ऐसी योजनाबध्द रचना है जो साधारण रसिक को सम ढूंढने के लिये अथवा सम पर आ रही है यह गृहित रख कर पता चलता है।

साधी तिहाई :

बोलो की रचना में कोई छोटी रचना तीन बार बजा कर अंतिम थाप सम पर आती है। इस के मुख्य दो प्रकार है १) बेदम तिहाई २) दमदार तिहाई

इसका अर्थ कहीं शांत घडी या पल अथवा श्वासोश्वास की जगह पर जोर देना पड़ता है। प्रथम प्रकार में दो खंडो के बीच में जगह नहीं होती है किंतु दोनों प्रकार में सम पर जाने की जो पध्धति है वह वैसी होती है जो पीछेसे परिणाम कारक होती है और रचना के अंत में नहीं होती है। और भी एक प्रकार की तिहाई होती है जिसे चक्रधार तिहाई कहते है। इस में बोलों का समुह टेढ़ामेढ़ा होता है और लंबा होता है। वह तालका कम अवर्तन पूर्ण कर सकता है। उनकी निश्चित संख्या लय पर निर्धारित होती है। जिन अक्षरों द्वारा चक्रधार तिहाई बनती है वह चक्रधार टुकडा, चक्रधार, चक्रधार गत अथवा तोड़ा इस नाम से पहचाना जाता है। साधी तिहाई शुरुआत से अंत तक उपयोगी होती है। चक्रधार तिहाई का बड़ा विस्तार गिनने के लिये और सोलो वादन का सौंदर्य बढ़ा ने के लिये उपयोगी होता है। नियमानुसार चक्रधार यह

द्रुत लय में बजायी जाती है और सोलो वादन का अंत करने के लिये उपयोगी होती है।

सभी घरानो में चक्रधार तुकडे विपुल प्रमाण में उपलब्ध है किंतु फरुखाबाद घराना इस में श्रीमंत है। अन्य घराने के वादक भी इसका उपयोग अपने वादन में करते है।

मोहरा :

इसमें दोनों रचनाऐं समान पल्ले की होती है। यह रचना सम पर आने के लिये सुंदर बोलों को इकठ्ठा करके बनायी हुई रचना होती है। साथ संगत करने के लिये इसका उपयोग कम होता है। उपयोग में लिये अक्षर मृदु और सरल होते हैं। इसलिये दोनों भाग अलग होते हैं और मुखडा तिहाई से ही समाप्त होता है। मुखड़ा ठेके के पहले बजाया जाता है। पहली थाप से शुरु होकर सम के पहले खत्म होता है अथवा सम पर खत्म होता है। इसका हेतु सिर्फ श्रोताओंका ध्यान ताल शुरु होने पर होता है। किंतु वह एक संमिश्र तिहाई पर खत्म होना चाहिये। दोनो का उपयोग गायन में समापन दिखाने के लिये उपयुक्त होता है।

फरद :

यह एक अलभ्य रचना होती है और उसका ढ़ाचा टेढ़ामेढ़ा होता है। और इस रचना को अमल में लाना और बजाना, यह बात सहजता से नहीं होती है। इसका प्रस्तुति करण के लिये मानसिक संतुलन और खूबसूरत बोलों के झुमके इकठ्ठे करके उसे में लाने चाहिये इसके लिए तैयार होना अत्यावश्यक है। यहाँ पर लय की जातियाँ आकस्मिक रुपसे बदलती हैं। यह बजाते समय सिर्फ मात्रा ध्यान में रखते हुऐ और अमल में लाना, यह महत्व का नहीं होता, बल्कि हरेक टुकडें का अर्थ और उसका पारस्पारिक संबध इनका अंतरज्ञान और अंदाज भी महत्व का होता है।

जब तबला वादक को कहाँ पर कौनसे बोल पर कौनसी रचना बजानी है इस बारे में अनिश्चितता होती है। उस समय उसके दिमाग में जो भी बोल सहजता से, आते है वह सम पर आने के लिये भरी से बजाता है उस समय जल्दीसे और नियमों को ध्यान में लेते हुऐ जो निर्माण होता है वह बोलों का स्वभाव दिखाता है। सम दिखाने के लिये जिस महत्व की जरुरत है उसे फरद कहते है। फरद आमतौर धिर धिर किट धा इन अक्षरों पर खत्म होती है किंतु हर बार इसका अंत ऐसा होना आवश्यक नही है।

लग्गी/लड़ी :

तबला वादन में यह दो रचनाऐं सबसे छोटी होती है। दोनों का उपयोग उपशास्त्रीय गायन में होता है। उदाहरण ठुमरी, गजल, भजन यह दोनों प्रकार सोलो बजाने में उपयुक्त नही है। जिसका एक भाग मुल से जकड़ा हुआ और दूसरा भाग बारीक सा होता है। लग्गी की शुरुआत जोर से होती है और धीरेधीरे बजाते उसका अंत होता है।

लाडी :

जब सही मायने से व्यवस्थित बजायी जाती है तब उसका अर्थ निकलता है। क्योंकि जब यह कुशलता पूर्वक बजायी जाती है तब वह एक समान बोलों की श्रृंखला समान होती है। इसमें बोल बजाते समय इसमें बदलाव नहीं आता है। क्योंकि वह छोटे समूह की याद दिलाते हैं।

मिसाल :

इसके बारे में कोइ भी टिपणी नहीं हो सकती है। मिसाल इस शब्द का अर्थ ठेके में ही विविधता दिखाना होता है। बनारस घराने के वादक लय ऊपर पकड़ रखने के लिये इसको काफ़ी प्राधान्य देते हैं। परंतु और घरानेदार तबलिये इसका उपयोग ज्यादातर नहीं करते। ठेका यह लय की पक़ड है और यही बदल गया तो लय एक समान कैसे बज सकती है। लहेरा वादक वैविध्य

के लिये नियमों को बाजू पर रखकर और स्पष्टता ध्यान में न लेते हुए सुमधूर पंक्ति से उसकी शुरुआत करे, तो तबला वादक को महत्व का भाग नही बजा सकेगा, जो उसके लिये महत्व का होता है। बहुत कम रचनाएं और नाद (Effect) इनके नाम विचित्र होते है। जैसे रचना, चलन, उडान, गुम्बद, लतिफा, गौपूच्छा, गोस, घसीट, घिसा, चाबुक मार तोडा, गत चार बाग इत्यादि। चलन याने शुरुआत में सीधे बोलों की रचना के लिये हिलचाल और यह रेले के समान होती है। यह अलग ढंग की होती है, इसमें तबला वादक एक निश्चित रचना बजाता है।

घुंबज :

यह रचना मंदिर और मस्जिद के गुम्बद जैसी होती है।

लतीफा :

बडी रचना का छोटा भाग किंतु यह छोटी रचना में बजता है। जिस प्रकार कोई प्रासंगिक अथवा अचानक कोई चुटकुला अपका मूड बदल देता है। उसी प्रकार लतीफा यह लयकारी में अधिक द्रुत लयकारी दिखाकर उस में बदलाव ला सकता है।

इश्क पेचा :

इश्क याने प्रेम और पेंचा याने कौशल्य पूर्ण इसकेलिए इसे इश्क की माला भी कह सकते हैं। कई उस्ताद बुलबुल की दास्तान अथवा पंखी की पूंछ। बुलबुल रचना किस तरह से अस्तित्व में आई कहते हैं कि मुगलकाल में एक नवाब को बुलबुल पक्षी ज्यादा प्रिय था। एक दिन वो अचानक बीमार पड़ गया और उसने कलरव करना बंद कर दिया। इसलिये नवाब दुखी हो गया। जब कोई हकीम उसको अच्छा करने में कामयाब नही हुआ तब राजदरबार के एक होशियार दरबारी के कहने पर एक उस्ताद को तबला वादन द्वारा बुलबुल में नव चैतन्य लाने के लिये तबला बजाने को कहा। उस्ताद ने एक कायदा बजाया जो बुलबुल के किलबिलाहट की तरह था और बुलबुल ने उसे प्रतिसाद देना शुरु किया उसलिये इस रचना को 'बुलबुल रचना' कह जाने लगी और उस्ताद को राज दरबार में राज वादक की उपाधि मिली।

कायदा लाल किला :

यह रचना सिर्फ लाल किले पर नगारा बजाने वाले पहले करते थे काफ़ी सालों के बाद यह तबला वादन में शामिल हुई।

गौपुच्छा :

इसका अर्थ गौ माता का पुँछ होता है जो शुरुआत से जाड़ी होती है और उसका अंत पतला होता है। पखावज वादन में यह महत्व की लय रचना है।

गण और घीसा :

यह रचना में इसकी गिनती नही की जाती है और जो नाद उत्पन्न होता है वह अलग प्रकार का है।

गांस।

इसका अर्थ तबला वादमें में गूंज होता है यह गूंज बायें हाथकी उंगलियों को मोड़ देकर उसे गोलाकार में हाथ को घुमाकर उससे नाद पैदा होता है और खुले हाथ से थाप देकर भी निकाला जाता है।

घिसा/घसिट :

इसमें जलद गति से बाँये पर थाप मारके घिसके होता है। कलाई और पंजे के बीच वाला भाग घिसकर बजाया जाता है। किंतु तबले के नियमो में सतत से बजाये यह उचित नही है। और यह ढोलक वाद्य के लिये उचित रहता है। तबला वादन में दो अक्षरों के मात्रा में जगह भरने के लिये इसका उपयोग होता है और बोलो को सुर में बजाने के लिये भी इसका उपयोग होता है।

उदाहरण धे ऽ न्त ऽ धा ।

संयुक्त बोलों द्वारा घीसा बजाना उपयुक्त होता है उसे भूल जाना संभव नही होता है किंतु उसे वह बहुत नजाकत से दिखाना पडता है इसलिये उसके नाद की मिठास कम नहीं होती है और मींड जैसा भी हो सकता है। कुछ समय के बाद ज्यादा बजाना यह श्रव्य के लिये अच्छा नहीं लगता उसका उपयोग प्रामुख्य से बजाते समय कहाँ करना है वह तबला वादक के विचारों पर और सौंदर्य शास्त्र की दृष्टि से करना होता है।

तालकी रचनाओ में अनेक ध्वनि उत्पन्न होती हैं। चाबुक मार तोड़ा याने घोडा सवार घोड़े पर सवारी करते समय जब घोड़े को चाबुक मारता है उस समय जो आवाज पैदा होती है उसी तरह के बोल बजाते समय वैसा नाद उत्पन्न होता है और उसकी लय भी उसी तरह की होती है। एक ऐसी रचना जो एक चक्र घुमकर पूर्ण होती है। यह गत तालों के भाग को चारबार थोडासा बदलाव करके बजाकर पूर्ण होता है। हरेक पंक्ति दुसरी पंक्ति के साथ जुड़ी होती है किंतु कायदा अथवा रेला के हिसाब से गत बजाने का हिसाब और उसकी रचना का स्वीकार नही होता है।

रो :

यह छोटी रचना होती है। यह रेले का ही भाग होता है। यह रचना गोल घुमाकर सुनाई देती है। रेला और कायदे की तरह इसकी गति डबल नहीं

करते किंतु उसे एक सुत्र में पिरोने,बांधने के लिये कुछ ज्यादा बोलों को चुनकर उसके साथ बजाने से एक झालर जैसी बन जाती है।

धाति कधि ऽनधि नक । ताति कधि ऽनधि नग

अभी इसकी रो बनाकर इसकी फिरत कैसी बनती है वह देखे गे ।

धातिर किटधिन तिरकीट धातिरकिटतक ।

तातिर किटधिन तिरकिट धातिरकिटतक ।

यहा धीन और त्रक के अलावा कोइ भी नयी रचना शक्य नहीं होती। सोलो वादन में तथा वाद्य के साथ रो बजाना योग्य होता है। परंतु महत्व की बात याने जब यह रचना बजायी जाती है उसका अंतीम खंड डबल गतीसे बजाया जाता है।

अंगुष्टना :

यह पध्दती भी रोजके अभ्यास में समझकर बजाना महत्व का है। उर्दु में अंगुस्त याने उंगली, गस्तता याने ऐसी चिज जो उंगली को कवच दे जो धातुसे बनायी होती है और मुख्य उंगली पर लगाई जाती है क्योंकी सुई जो काजबटन करते समय लग नजाय इसके लिये लगाया जाता है।

---

१०६ द आर्ट आॅफ तबला रिधम पृष्ठ क्र ५४ - ५९

५-२ ऑल इन्डिया रेडियो स्टेशन से प्रसारित प्रो सुधीरकुमार सक्सेनाजी का तबले के घराने के बारेमें चर्चा । इसका प्रसारण सभी प्रांतीय भाषाओं में अनुवादित हो कर उसी समय एक साथ प्रसारित हुआ था ।

तबले के घरानो के बारे में चर्चा करने से पहले मैं यह अत्यंत आवश्यक समझता हूं कि मूलतः 'घराना' शब्द की व्याख्या और उस का शाब्दिक अर्थ समझ लिया जाये। इसके अलावा घराने से संलग्न वस्तुओं की जानकारी भी स्पष्ट की जाये। घर शब्द का अर्थ् है वंश अथवा परिवार (Heridity/Family) और घराना शब्द का अर्थ है वंश विशिष्टता। इसलिये तबला वादन में घराने का अर्थ हुआ एक प्रकार का चलन, रीति, पद्धति अथवा बजाने की एक निश्चित परंपरा।

घराना कलाकारों का एक ऐसा परिवार है जिसकी प्रत्येक क्रिया और वस्तु में उस घराने के नियम तथा उसके मुख्य सर्जक की छाप स्पष्ट रहती है। घराने के मुख्य नियम आचरण और रीतीरिवाज उस समय की राजकीय एवं सामाजिक परिस्थिति तथा उसके मुख्य सर्जक की अपनी सूझबूझ और संस्कृति पर आधारित होते हैं। यही कारण है कि घराने के मुख्य गुणों की छाप उसके घराने के सभी कलाकारों के मुख्य गुणों की छाप उनके घराने के

सभी कलाकारों की कला में प्रदर्शित होती है और इसी वजह से घराने सदा के लिये जीवित रहते है।

गुरु-शिष्य परंपरा :

घराने के मूल में गुरु-शिष्य परंपरा का एक विशेष स्थान है। घराने में सीखनेवालो के हाथों में गुरु की सारी विशेषताऐं उतर जायें और बोलो की अदायगी वैसी ही हो, यही घरानेदार परंपरा रीति का मुख्य आधार है, क्यों कि दीर्घ तालीम और कठोर अभ्यास से ही यह संभव हो सकता है और इसी कारणवश एक घरानेदार तबला वादक तबले पर हाथ रखते ही अथवा थोड़ासा बजाते ही तुरंत मालूम हो जाता है कि वह कलाकार किस घराने से वादन सीखा है।

प्रत्येक घराने के बोल और उसकी बंदिश की अदायगी का ढंग एक खास प्रकार का होता है जो दूसरे घरानो से कहीं कहीं भिन्न होता है। तबले के बाज को मुख्य दो भागों मे बाँट सकते है। पश्चिम बाज जिसमें दिल्ली और अजराड़ा घराने का समावेश होता है। पूरब का बाज इसके अन्तर्गत लखनऊ और फरुखाबाद वादन शैली आती है। बाज दो प्रकार के हैं।

१) बंद बाज २) खुला बाज

बंद बाज में मर्यादित ध्वनि उत्पन्न होती है और इसके बोल अथवा बंदिशे बारीक मुलायम और सुंदर होती है। इस बाज में चाटी और किनार का सुदंर प्रयोग होता है और इसीलिए इसको किनार अथवा चाटी का बाज भी कहते है। इस बाज में दायें हाथ की दो उंगलियाँ और बाँये हाथ की दो उंगलियों का कलात्मक प्रयोग होता है। इस का अर्थ यह नही है कि पश्चिम घराने के बाज में सिर्फ चार उंगलियों से ही तबला बजता है, कहने का आशय यह है की इन घरानो की बंदिशे ही ऐसी होती हैं जिस में चार उंगलियों का मुख्य प्रयोग होता है। साथ में समझ लेना आवश्यक है की दूसरी उंगलियों का उपयोग वर्जित नही है। इस बाज का सबसे बडा योगदान यह है कि इस बाज ने तबले का अस्तित्व कायम किया, अर्थात उसे पखावज वादन की रीतिसे बिलकुल अलग कर दिया। मिसाल के तौर पर इस बाज के उस्तादों ने पेशकार और कायदे की बंदिशे बनाई। यह जान लेना आवश्यक है कि, इन दोनों तरीकों का पखावज में बिलकुल उपयोग नहीं है और ना ही उसपर बजाया जा सकता है। पखावज वादन की क्रिया में दो हाथों के दोनो पंजों का उपयोग होता है, इसके बोल गंभीर और वजनदार होते है, तबले पर बजाने वाले कायदों में मर्यादित ध्वनि उत्पन्न होती है, इसलिये पश्चिमी बाज

के उस्तादों ने पेशकारों ओर कायदों की रचना कर तबला बाज को पखावज बाज से बिलकुल जुदा कर दिया।

खुला बाज :

खुले बाज में ध्वनि गूंजयुक्त,प्रबल और जोरदार होती है सच तो यह है कि इस बाज में और पखावज के बाज में कुछ अंतर ही नहि आता। इस बाज में मुख्यतः पूरे पंजे का प्रयोग होता है और बोल जोरदार और गंभीर होते है और यही कारण है कि बडे बडे उस्तादोंने इस बाज को शुध्द तबला वादन नही माना है। उनका तर्क है कि अगर पखावज के बोलो को ही तबले पर बजाया जाय तो तबले का अस्तित्व खतम हो जाता है, इसके अलावा पखावज के बोल में कुछ ऐसे भी अक्षर है जो तबले पर बजा नही सकते, जैसे म अथवा धुमकीट।

सभी तबले के घरानो में उपयोग किये जानेवाले मूलअक्षर एक समान है और उन अक्षरों का उच्चारण और वादन एक समान ही है। सभी घरानों में धा को धा और धीं को धीं अथवा तीट को तीट किट को किट ही बोला जाता है, मगर जब इन अक्षरों अथवा मुलाक्षरों को जोडकर किसी प्रकार की बंदिश बनाई जाती है तो घराने की छाप उसपर पडती है। घरानो में अंतर पैदा करने के लिये बड़ेबड़े उस्तादोने अलग अलग बंदिशो द्वारा विशेष अक्षर

का प्रयोग किया,हर उस्तादने अपनी बंदीश में किसी खास अक्षर पर अधिक जोर दिया और उसका उपयोग बारबार किया जैसे दिल्ली घराने में तीट पर अधिक महत्व,अजराड़ा घराने में दिंगदिनागिना का उपयोग, लखनऊ घराने में धित और धीट का उपयोग फरुखाबाद घराने में धीरधीर का उपयोग। कहने का अर्थ यह है की हर घराने की बंदीशो में किसी ना किसी मुख्य अक्षर का महत्व रहेता है। जिससे उस घराने की पहचान होती है। सामान्यतः तो लय के सभी प्रकार सब घरानो में एक से ही है, परंतु अदायगी में अंतर अवश्य पडता है और इसलिये अलग,अलग बाजो को अलग,अलग नामों से पुकारा जाता है। जैसे किनार का बाज और गद्दी का बाज अथवा लौ का बाज।

अब तबले के बोलों के निकास पर चर्चा करुंगा दिल्ली घराने में तीट और तीरकीट बजाते समय मध्यमा का और तर्जनी का उपयोग करते है। लखनऊ और फरुखाबाद घराने में यह अक्षर बजाने का ढंग अलग है। इन घरानों में इन अक्षरों के निकास के समय अनामिका और मध्यमा का दोनो साथ में रखकर ती बजाया जाता है और ट तर्जनी से।

तबला वादन में घराने दो प्रकार से कायम रह सकते हैं पहला यह कि घरानेदार उस्ताद शिष्यो को दिल खोलकर सच्ची तालीम दे। दूसरा तरीका यह है कि अपने शिष्यों को दूसरे घराने की खुबीयों से परिचित होने दे। जब

तक एक विद्यार्थी हर प्रकार के बाज से परिचित नही होगा तब तक वह एक सफल संगीतकार नही बन सकता। हर घराने में किसी प्रकार की खूबी होती है और इन्ही खूबियों से वह जीवित रहते है। इसलिये घरानो में झगड़े तर्कहीन लगते है।

कई विद्वानों का मत है कि घराना जैसी कोई चीज नही है। ऐसे लोग या तो किसी घराने अथवा परंपरा के परिचय में नही आये है अथवा ऐसे विद्वान सुनकर अथवा किताबों में पढ़कर वादन सिखने का दावा रखते है। तबला वादन एक नियमबध्ध और शास्त्रीय कला है और घराने का मतलब केवल रीतिबध्ध वादन है।

सारांश में तबले के घराने भिन्न भिन्न कारणों से अलग हो गये है परंतु अगर मूलतः देखें तो तबले का बाज अथवा तबले की वादन शैलियाँ तो मुख्यतः दो प्रकार की है जिन्हें "खूलाबाज और बंद बाज" नाम से पुकारा जाय तो अनुचित न होगा। खूले बाज पर पखावज का असर अधिक है, अर्थात इस बाज के अथवा शैली के बोलों की अधिकतर रचनाये ऐसी है कि उन्हें उसी ढंग से बजाना सुगम है और सुनने में भी इन रचनाओ का इस ढंग से बजाने पर ही सच्चा आनंद मिलता है।

बंद बाज को हम अगर शुध्द तबला कहें तो उचित होगा, क्यों कि बंद बाज की रचनाऐं सिर्फ तबले को ध्यान में रखते हुऐ बनायी गयी हैं, ऐसा कहें तो अनुचित न होगा। घराने अमर है, सदा से चलते रहे हैं और चलते रहेंगे क्यो की सभी घरानो का बाज नियमबध्ध होता है। अगर हम नियमों को तोड दें तो न वह शुध्धबाज कहलायेगा और नही उसको सीखने की जरूरत होगी । नियमों पर ही घराने टिके हुऐ है और सदा टिके रहेंगे।

५-२-१ प्रा. सुधीरकुमार सक्सेनाजी का अहमदावाद, वड़ोदरा रेडियो स्टेशन से दिनांक २९-८-१९८८ रोज प्रसारित तबले के अजराड़ा घराने का परिचय तथा उसकी वादन शैली

तबले के घराने अथवा घरानो के बारे में चर्चा करने से पहले मै यह अति आवश्यक समझता हुं कि मूलतः घराना शब्द की व्याख्या और अर्थ समझ लिया जाय।

'घर' शब्द का अर्थ है वंश अथवा परिवार, घराना शब्द का अर्थ हैं वंश विशिष्टता निकाला जाय तो अयोग्य नही होगा।

इसलिये तबला वादन में, घराना का अर्थ हुआ रीत पध्दति स्टाईल, स्कुल अथवा एक निश्चित परंपरा।

घराना कलाकारोंका ऐसा परिवार है जिसकी प्रत्येक इकाई में उसके नियमो तथा उसके आद्यकर्ता की छाप लगी रहती है। घराने के मुख्य नियम, ध्येय, आचरण और रीति रिवाज उस समय की राजकीय एवं सामाजिक परिस्थिति तथा उसके मूल प्रवर्तक कि अपनी प्रवृत्ति, संस्कार और संकृति पर अधारित है। यही कारण है कि घराने के मूल प्रवर्तक की छाप उसके सभी पीढी दर पीढी कलाकारो की कला में स्पष्ट दिखाई देती है और इसी कारण वंश घराने सदा के लिये जीवित रहते है।

घराने के मूल में गुरु-शिष्य परंपरा का महत्वपूर्ण स्थान है। गुरु की विशेषताऐं शिष्य के हाथो में समा जाय और वैसे ही बोलोकी अदायगी हो यही घराने की परंपरागत प्रथा का मुख्य आधार है। क्योंकि दीर्घ तालीम और सतत अभ्यास से ही यह संभव हो सकता है। यही कारण है कि एक घरानेदार तबला वादक के हाथ रखते ही मालूम हो जाता है कि कलाकार दुसरे घराने से संबधित है। हरेक घराने की प्रस्तुति करण की एक विशिष्ट शैली और नियम होते है।

तबले के प्रचलित बाजों को मुख्य दो भागो में बाट सकते हैं।

१ पश्चिम बाज : जिसके अंर्तगत दिल्ली और अजराड़ा क वादन शैली आती है ।

२ पूरब बाज : इसके अंर्तगत लखनऊ, फरुखाबाद और बनारस की वादन शैली आती है ।

बाज दो प्रकार के है । बंद बाज खुला बाज

बंद बाज : बंद बाज में मर्यादित ध्वनि उत्पन्न होती है और इसके बोल पतले मुलायम और सुंदर होते है। इस बाज में चाटी अथवा किनार का अधिक प्रयोग होता है, अतः इसे किनार का बाज भी

कहते है। इस बाज में दो उंगलियाँ का अधिक प्रयोग होता है।

खुला बाज : खुले बाज में ध्वनि गूँजयुक्त एवं प्रबल होती है। यह बाज पखावज की वादन शैली के अधिक निकट है। इसमें उंगलियों के साथ साथ पूरे पंजे का प्रयोग भी प्रचलित है। इस बाज के बोल जोरदार और गंभीर होते है।

तबले के सभी घरानो में अजराड़ा घराने का एक विशेष स्थान है। प्राचीन अथवा अर्वाचीन वयोवृध्ध सभी विद्वानों का मत है कि अजराड़े का तबला केवल तबला वादक के सुनने की वस्तु है। इसका अर्थ यह नही कि यह बाज आम श्रोताओं के आनंद के लिये नही है। कहने का तात्पर्य यह है कि इसबाज की सौन्दर्यात्मक अदायगी और इसकी बारीकियों की विशेषताओं को एक तबला वादक अच्छी तरह समझ सकता है और इसका पूर्ण आनंद ले सकता है।

दिल्ली के निकट मेरठ जनपद में एक छोटा सा गाँव है, जिसका नाम अजराड़ा है। वहाँ के मूल निवासी दो भाई कल्लू खाँ और मीरु खाँ दिल्ली आकर उस्ताद सिध्धारखाँ दाढ़ी के पौत्र सिताबखाँ से उन्होंने तबले की

विधिवत शिक्षा प्राप्त की और शिक्षा पूरी होने के बाद वे अपने गाँव वापस चले गये। तत्पश्चात् इन बन्धुओंने अपनी प्रतिभा और सूझबूझ से अपनी गुरु परंपरागत प्राप्त वादन शैली में मौलिक परिवर्तन किये और नये ढंग की बंदिशो का निर्माण किया।

अजराड़ा घराने के विद्वानों ने कायदे की रचनाऐं तिस्त्र जाति में इतनी सुंदरता और समझ से की है कि यह बंदिशे तुरंत लोकप्रिय हो गयी। इस घराने में बायें का प्रयोग मींडयुक्त, सुंदर एवं दाहिने के बोलो से लडता हुआ है जो अन्य किसी घराने से अलग है। मिसाल के तौर पर एक कयदा पढकर समझाता हुँ।

धाऽकड धितीट धागेती टकीट धाधाघे धेनक तिनति नाकिना

ताऽक्ड तिकिट ताकेती टकीट तिताके केनक धिनधि नागिना

अभीतक तबला वादन में मध्यमां एवं तर्जनी का ही प्रयोग होता था परंतु इस घराने वालोने तबला और बाँया दोनों पर इन उंगलियो के साथ साथ अनामिका का भी प्रयोग आरंभ किया। इस नवीन प्रयोग से कुछ बोल जैसे धिनगीन, धाधागीन और गीनधा आदि अत्यंत सरलता और सफलता से द्रुतलय में बजने लगे। इस बोल समूह में 'न' तर्जनी से चाटी पर न बजाकर अनामिका से स्याही के पुर्व भागसे निकाला जाने लगा।

यह घराना कायदो की खुबसुरती और विविधता के लिये विशेष प्रसिध्ध है। यहाँ के कुछ कायदे कत्, तीं, धागेन धिनक और धिक्ड धीं आदि बोलो से प्रारंभ होते है। जो अन्य घरानों में कम दिखते हैं।

इस घराने के कुछ कायदो में एक और विशेषता देखने को मिलती है, जो कायदो के उत्तरार्ध अर्थात खाली से संबधित है। अधिकांश के उत्तरार्ध का भाग पूर्वार्ध्द बंध (बाँया रहित) ही होता है जो निम्न कायदे से स्पष्ट हो जायेगा।

धाऽगे गेनक धिटधी टकीट धाधागे गेनक तिनती नाकीना ।

ताऽके केतक तिटती टकीट धाधागे गेतक धिनधी नागीना ।

इसके विपरीत अजराड़ा के इस प्रसिध्ध कायदे को सुनिये। इसके उत्तरार्ध का भाग अन्य कायदे से भिन्न है। उदाहरण देकर समझाता हूँ।

धाधाधा धिधी

उपर्युक्त कायदे में खाली के बोलों में "तातातता और तिंताती के स्थान पर तिऽऽनाऽन ताके तिरकीट" बोल लगाये गये है, जो कायदे के साधारण नियमोंसे हटकर हैं और यही इस घराने की विशेषता है।

स्वतंत्रवादन के लिये यह बाज बहुत सफल और उपयुक्त है। क्योंकि इसमें जिस वादन का प्रदर्शन होता है उसे सभी जानेमाने गुणीजन शुध्द

तबला मानते है। इसके बोलों में पखावज का ढंग लेश मात्र भी नही है। और यही कारण है कि यह बाज अत्यंत कठिन होता है और साध्य होने पर भी अधिकतर गुणीजनों के बीच ही सराहा जाता है। इसके विभिन्न लयकारियों से भर हुऐ लचीले और झुमते हुए कायदे वादन में विशेष आकर्षण और दिल में एक अनोखी गुदगुदी सी पैदा कर देते हैं।

इस घराने की ऐक रचना को उदाहरण देकर समझाता हूँ।

धिं धागेन धाऽ धागेन धाती गेगेनक तिनति नाकीना ।

इस घराने के पूर्वज कल्लुखाँ और मीरुखाँ की वंश परंपरा में मोहम्मदी बख्श, चांदखाँ, कालेखाँ, कुतुबखाँ, तुल्लनखाँ ऐवं घीसाखाँ हुऐ। कुतुबखाँ के पुत्र हस्सुखाँ माने हुऐ उस्ताद हो गये। उनके पुत्र वंशज ऐवं शिष्यो में बब्बुखाँ, शम्मुखाँ तथा नन्हेखाँ हुऐ। शम्मुखाँ के पुत्र उस्ताद हबीबुद्दीन संगीत जगत में चमके। खाँ साहब के हाथ में ऐसा जादू था कि जब वे बजाते थे, बेजोड बजाते थे। वह सोलो और संगत करने में पटु थे।

अब अजराड़ा घराने के बोलों की निकास विधि पर चर्चा करेंगे। तबले पर बजनेवाले वर्णाअक्षर, पराक्षर या मूलाक्षर कहलाते हैं, वह सभी घरानों एवं बाजो में एक समान ही होते हैं। सभी घरानों में धा को धा धिं को धिं ना को ना और ट को ट ही कहते है। परंतु विभिन्न घरानों में उनके निकास

की विधि में थोड़ाथोड़ा अतंर होता है। प्रत्येक घराने में कुछ विशेष प्रकार की मौलिक रचनाऐं भी बनी है और घराने के कर्णाधिकार विद्वानों ने बंदिशों को बजाने की विधि में परिवर्तन किये। इसीसे विभिन्न घराने अलग अलग अस्तित्व में आये और उनकी पहचान बनी। इसी संदर्भ में अजराड़ा घराने के बोलों की निकास पद्धति पर विचार करते है।

केवल अजराड़ा घराना ही एक एसा घराना है जिसमें एक अक्षर केवल एक ही उंगलीसे बजाया जाता है। अर्थात कोई भी अक्षर निकाल ने में एक साथ दो उंगलियों का प्रयोग नही होता है। मिसाल के तौर पर तिरकिट के निकास को ही देखा जाय, अजराड़ा घराने में ति मध्यमासे और र तर्जनी से,कि बाये पर ट अनामिका से निकाला जाता है। जो सब घरानों से अलग पड़ता है।

अजराड़ा घराने में न और ना के उच्चारण और निकास का अंतर स्पष्ट रुप से माना जाता है। न अक्षर किनार अथवा चांटी के पास के भाग में अनामिका से निकाला जाता है, जब की ना अक्षर किनार पर तर्जनी से निकाला जाता है। त्रिपल्ली रुप के कायदे केवल अजराड़ा की एक अनोखी प्रतिभा है। त्रिपल्ली का अर्थ है बन्दिश को तीन लयों में बजाना। और फिर तीसरी लय में उस कायदे की लौट,पलट किये जाते है। अजराड़ा घराने के इस प्रकार के एक कायदे की पढंत सुनिये।

धाऽधाऽधाऽ धाऽगेगेनक धिनगेगेनक दिननिागीना

तकधिनगीन तकीटधाऽऽ धिनगेगेनक तीनतिनाकीना

अजराड़ा घराने की बंदिशो में एक ऐसी नवीनता पाई जाती है,जो दूसरे घरानों की रचनाओ में बहुत कम मात्रा में पायी जाती है। इस घराने के विद्वानों ने हर अक्षर के कायदे बनाये है जो इस घराने को दूसरे घरानों से भिन्न कर देते हैं। इस प्रकार के कुछ कायदे पढकर सुनाता हूं। सुनिये कितनी सुंदर बंदशि है। यह कायदा 'कत' अक्षर पर बना हुआ है।

धाऽधाऽ कतगिन तीनाकत गिनतीना कतकत गिनतीना कतगीन तीनाकीना

ताऽताऽ कतकिन तीनाकत गिनतीना कतकत गिनतीना कतगीन धीनागीना

अजराड़ा घराने के रेले भी सब घरानो में अपना अलग ही स्थान रखते है। इस घराने के रेले भी चतुस्त्र जाति में तो है ही जो दूसरे घरानो से मिलतेजुलते है,मगर इस घराने के उस्तादोंने बहुत से रेले की बंदिश तिस्त्र जाति में इतने सुंदर ढंग से की है कि केवल सुनने में उनका सच्चा आनंद आता है। एक त्रिपल्ली अंग के रेले की पढंत सुनाता हूं।

धाऽति रकीट धाऽघी डनग धिनधी नागीना धाऽघी डनग

धिनधी नागीना धाऽती रिकीट धाऽघी डनग तनिती नाकीना

अभी जो स्वतंत्र वादन आपने सुना उसे सुनकर मुझे विश्वास है की श्रोताओं को अजराड़ा घराने के तबला वादन की विशेषताऐं स्पष्ट हो गयी होगी।

५-३ THE ROLL OF RHYTHM IN MUSIC

Before an attempt is made to indicate the importance of rhythm in the realm of music, it is necessary to understand clearly its meaning, its relation to other allied concepts, and its relation to other allied concepts, and its psychological purpose of necessity. Only then can we pass on to examine the aesthetic character of rhythm, and its contribution to the total effect in the case of both esthetic creativity and appreciation. The aesthetic everywhere transcends and transmutes the merely physical or even psychological, but in normal experience it is rarely, if ever, completely removed from the latter.

Rhythm and allied concepts so, what is rhythm? A simple answer is this: rhythm or tal is regularly recurring movement isolated, identified and measured in respect of its manner and speed. Measurement (in tall) of laya from the viewpoint f the manner (called 'andaz') gives us the distinctive idiom (or 'chalan') of the various 'thekas'. – Such as Tritaal, Jhaptal and Ektall : and measurement of laya is taal (or rhythm) in respect of the formers speed gives us such notions as 'Vilambit',Madhya' and Drut'.The original unmeasured thing is the manner and speed of movement. This becomes laya when the mind begins to flow in harmony with it, without as yet interposing distinctions into it. Laya when measured it 'Tall'. Tall is to laya what a yard

is to distance in both cases the former is a measure of the latter. Again, as a yard possess definite internal distinctions – say, inches and their further sub-divisions – so a taal has its own inner accents, the 'khaali' and the 'bhari' and the individual matras. Now, the Taal or rhythm taken with its own internal distinctions, number of matras and manner of movement – and not in the general sense of merely being a measured cross-section of laya- is a 'theka'.

The 'theka' therefore, points firstly to something other than itself to that of which it itself is a mere measure, saya-laya and secondly, asserts its own character. It has its own aesthetic design the inner accents of which are, or should be, all clearly articulated hence the 'sum' the 'khali' and the 'bhari of the 'theka'. Has anyone reflected as to why there is 'khali' in every 'theka? Or again, why should we at all talk of matra instead of remaining content with mere laya? The answer to both these questions is provided by a simple psychological truth. The matras, the 'khali' and 'bhari' and the 'sum' lend internal variety and distinctness to the 'theka'. This, in turn helps concentration. Any vocalist will testify to it that he quickly becomes impatient with a tabla player whose 'theka is not distinctly articulated in its parts, and that not merely because the vocalist find it difficult to pick up laya if the 'khali' is not shown properly (though that too is often the main cause),

but because the design (or the shape, as they say) of a 'theka' thus executed is not conductive or concentration, because not satisfying aesthetically.

The logic of Laya-measurement

Now, here I may be allowed to make an observation of a theoretical character. From mere movement-of things in space or of ideas – to laya (which shows the mind getting involved with this movement): from: laya: to 'taal: from taal to theka: from theka to its sam,'khali and bhari,- it is the same psychological necessity that compels the transition of thought : it is the irresistible because innate- attempt of the mind to understand the original undifferentiated datum of experience by inlaying it with measured and distinct articulations. In **every** act of its attending, the mind of Man rebels against the idea of having to deal with the diffuse, the limitless and the undifferentiated. The protest of 'Brahman' is a case in point. The experience, even as it comes originally, is neither a characterless continuity nor a mosaic of chaotic bits, but an 'articulated field of view, -distinct objects appearing as original wholeness against a background, the latter being at once essential to, yet distinct from, the exact perceived character of the former. The same holds true of music, presented or appreciated. Here rhythm or tall present as itself, say, in allaap, or in the more definite from 'theka' as is subsequent performing- introduces

distinct accents is to aesthetic, creativity or appreciation lending ready appeal to the latter.

Rhythm Facilitates Attention

The 'theka' is, as we have seen, an 'articulation' of laya, that is, an identification of the range and inner character of a portion of the latter. This helps understanding and concentration. We may take simple examples to illustrate this point. Only trained listeners enjoy simple examples to illustrate this point. Only trained listeners enjoy 'alaap' or jor in vocal and instrumental music (respectively): the average listener enjoys only 'sthayee-singing' or 'gatkari' both of them being, as we know, varieties of performing with professed dependence on the 'theka'.'Laya' is there even in the former facets or aesthetic delineations, but there it is not sufficiently articulated (that is, not so compressed and internally differentiated) t least not so much as in 'gatkari' or 'sthyaee singing' and so the average listener or even the average performer quickly becomes impatient with alaap, and breathes a sigh of relief when the tabla begins 'accompanying' the main performer.

Another simple example to illustrate how exactly the articulation of laya helps concentration is furnished by the case of the devout Hindu who counts the beads of his rosary while saying his early morning prayers. I think he does so though unwittingly in response to a vital psychological necessity.

The bead with it discreteness and the isolated (though repeated) Ramanama chanted to the rhythm of the bead slipping back as the finger passes on both variegate the hue of the mood,' articulating' situation to help contemplation. So, rhythm is the articulation of 'laya'. It facilitates the grasp of attention thus helping both the performer in his creativity and the listener in his creativity and the listener in his appreciation. Having indicated the essential psychological necessity of rhythm, I may pass on further to show how rhythm or taal is not only appealing in itself but lends appeal to music in general. Rhythm is itself an aspect of music, and so an attempt to indicate the intrinsic charm of rhythm will be at once a pointer to the role it plays in the realm of music.

Rhythm's own charm

The appeal of rhythm, considered in comparative isolation from music in general, consists essentially if not entirely in its conformity to an important psychological law, the law of repetition with variation, or, the law of figure and goround, rhythm, as we defined it initially, is regularly recurring or repetitive movement. Repetition itself attracts attention. But, as used in music rhythm is not merely repetitive movement – such as the one seen in the swinging pendulum of a clock: it is repetition interspersed – of a clock: it is repetition interspersed – or rather studded with subtle of delighting the audience with the intrinsic beauty of the 'theka'itself that is, without

resorting to hectic speed or independent patterning, such as 'toras' and 'gats. It is true that conformity to the law of figure and ground during actual performing is made difficulty by the very structure of our instruments for, whereas the 'pakahwaj' seems to excel in preserving continuity through resonance, the tabla seems to revel exclusively in distinctness of strokes: yet, it remains a fact that, variations. The repetitive part, which is also the more inclusive, furnishes the background against which the variations appear as delightfully discrete figures. The general patternings of the table player are variations upon the ground of the 'theka' even as the 'gatkari of the sitar or sarod player conjures up variegated beauty upon the original 'gat'which serves as the ground.

Figure and Ground in \rhythm and its Patterning

Here I may be allowed to make two observations which do not easily strike the average listener, but which are of profound aesthetic value, and which often cast a spell over him without his knowing the secret of the charm. Firstly, the crisper and more unexpected the variation, and the more inclusive the general background, the sharper and more irresistible will be the effect of the former (provided, of course, the listeners attention has been following it closely), so sharp and readily appealing indeed that the listener will be compelled into an expression of spontaneous applause. This explains why the most completely satisfying thing in the art of 'solo' tabla playing is

a 'quaidaa' that is, regularly repetitive timing pattern having clearly marked sun-divisions in an through which the passage of laya from one to the other meanders through a delightfully different curl of grace, technically called 'balkhulna' that is the unwinding of the subtle turns of the pattern, Secondly, the law of figure and ground operates not only in the patterning thought to be extraneous-wrongly. I maintain- of the 'theka' or the 'gat', but in the rendering of the latter themselves. And here incidentally I get a chanced to indicate how the merely psychological is transmuted in to the esthetic.

From psychological to Aesthetic.

The proper execution of a 'theka' shows its different accents as the self-differentiation of a pervasive continuity. Just as the perceptual field of view is not broken up- it is only articulated-by the distinct objects which it contains, even so the different matras or sub-sections of a theka- that is, its 'khali' and 'bhari –should only appear as accents, however clear, in (or of) a continuity. The continuity is suggested and preserved by the use of ' the Banya'which produces resonance that serves as a breathing depth enveloping the sharpness of strokes, and preventing the latter from appearing as completely separate from each other. The other aspect of individuated sharpness is provided by cleanly executed strokes: hence the importance of using the 'chaant' – the edge – of 'the right one' correctly. Only when these two conditions have been fulfilled can the law of figure and ground become

operative in the 'theka' itself and give to the latter and independent charm of its own. And once the law becomes operative the 'left one' conjuring up continuity and providing the ground, because of which perhaps it is called 'the male one' – the distinct strokes, instead of appearing as inserted into the 'theka' or as a mere string of disconnected units, appear as the self-differentiation of the theka's own vitality. The 'theka' now appears as a thing of intrinsic charm: the mind ceases to be free not to like it : and appeal now seems to be compelling and as coming from outside the mind, which means that merely subjective appeal has been superseded by objectives value or that the psychological has given place to esthetic. Not many tabla players of today, however, are capable whether the instrument in question be a 'tabla' or a 'pakhawaj'; a consummate exponent can provide in his performance a truly bewitching blend of continuity and discreteness.

Rhythm and Music

We may now pass on to rhythm seen as lending charm to music in general. Rhythm, like laya and all its other 'articulations' indicates a self-involvement of the subjective and the objective. It is true to its aesthetic nature only in so far as the movement measured and marked by it secures to itself the attention of the subject. Now, in music, whether presented or enjoyed, rhythm serves exactly this purposes. It attunes. On the one hand, the mind of the performer with the emotive pictorial or ideal significance of

the singing; and, on the other, the mind of the listener with the song that is being presented to him. I both the cases, laya is there in the since of the exact duration of the stay of voice at a particular 'svara', regulated with a view to make it most effectively conducive to aesthetic suggestiveness. In fact, laya in every case is noting but the lapse of time made to sub serves the interests of beauty which, in the realm of music, may be taken to mean the self-dissolution of the artiste in emotive suggestiveness.

Rhythm in Alaap

Take the case of alaap. Here laya is present either as itself or as rhythm, not in the form of 'theka'. But it is certainly present in every moment of alaap, supposing of course, that the latter is correctly done. For example, if during alaap in raag todi', the ground 'sa' is just touched lightly, the 're' developed immediately out of it, and if, finally the voice be allowed to linger steadily at 're' developed immediately out of it, and if finally, the voice be allowed to linger steadily at 're' the transition of voice will be suggestive of a gradual sunrise (hence the name tejasi rishab) but this effect will be completely killed if the stay of voice is longer at 'sa' than at 're' or again, if during ascent, the voice flits suddenly from 'ma' to 'dha' and then lingers in to 'dha' the effect of yearning or begging will be created. This is the secret of the ideal suggestiveness of every swara.

Rhythm in every Svara.

In fact, every 'swara' has got to be in laya. It is unfortunate that 'lay Kari' is now a day's that is to be something separate from general performance. I have seen that in every case when a performer tries to show 'lay Kari' – tat is, tries to present it as something dissociated from general presentation – the aesthetic effect suffers perceptibly laya, whether as length of duration at every 'swara' or as the manner of movement of a particular pattern of ornamentation-say a 'toraa' or 'taan' – or as the resumptions of 'sthyaee' (after the execution of a taan) from a very delicate nook, ought to permeate every moment of performance, laya and svara are the life-breath of music, even its feeling imagery is that of poetry. And just as we will not pardon a poet who tries to bring in imagery in a staccato manner, so should we condemn a musician who tries to 'do lay Kari' distorting that which ought to permeate music pervasively who a mere aspect jerkily self-assertive.

५-४ रियाज़ और तालीम के लिये अनुशासन :

तबले के तालके बारे में मूलभूत रीति से कुछ कहना आसान नही है। रियाज़ी तबला वादक को अपना खुदका रियाज़ सातत्य पूर्ण करना चाहिये। वास्तविकता यह है कि कोई भी ललितकला जितनी ही महत्वपूर्ण है। अच्छी गुणवत्ता के आधारपर उसे प्राप्त करना अथवा उसे यथावत स्थिति में रखना उसके लिये वादक को भी उस के नियमों का पालन करना चाहिये वह भी अनुशासन पूर्वक से। उसके साथ,साथ सकारात्मक भाव अपनाकर व्यवसायिक दृष्टि से रहना चाहिये। यह जो बात इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि जो तबला वादन एक व्यवसाय की दृष्टि से देखते है उन्हे सकारात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिये जो सिर्फ तबला अपने शौक़ के लीये रखता है उनके लिये तबले के रियाज़ करने में अनियमितता हो सकती है किंतु ऐसे लोग मधुर वाद्य की वादन शैली की सुंदरता,और उसके स्वाद को चख नही सकते या पचा नही सकते।

तालीम के नियम :

रियाज़ मुख्यतः दो प्रकार से होता है। प्रथम रीत इसमें अलग,अलग रचनाओं के गुणोंको पहचाने बिना करने में आया हुआ रियाज़। और द्वितीय जिसमें रचनाओं के आंतरिक भेद को पहचानकर और उसे बराबर समझकर

दिमाग में रखकर समझदारी पूर्वक रियाज़ करना, इसप्रकार दो भागो में रियाज़ का महत्व समझाया है। सर कहते है कि जब विद्यार्थी तबला बजाने की शुरुआत करता है तब तक तो पहला रियाज़ वैसा ही होता है। किंतु सातत्य पूर्ण रियाज़ करने के बाद वही विद्यार्थी उसका भेद जान जाता है और समझदारी पूर्वक रचनाओं को पहचानकर रियाज़ करता है। और यह रियाज़ कम मेहनत से होता है और उसपर उसका अधिकार स्थापित हो जाता है। रियाज़ करने का ऐसा कोई नियमित समय नहीं है। वादक स्वयं किस हेतु से और कितना समय रियाज़ करता है यह महत्वपूर्ण है। परंतु देखाजाय तो वादक जितना समय रियाज़ के लिये देगा उतनी ही सिध्दि उसे प्राप्त होगी। नियमानुसार कहे तो रियाज प्रतिदिन निश्चित किये समय पर और निश्चित स्थान पर करना चाहिये। ऐसा करने से वादक अपनी एकाग्रता और नियमितता केन्द्रित कर सकता है। रियाज़ करते समय कोई वादक थक जााय तो वादक को थोडा आराम करना उचित होगा और थोडी देर बाद, नये जोश और उत्साह के साथ फिर से रियाज़ करने की शुरुआत कर सकता है। क्या आराम की जरुरत है? अवश्य है। क्योंकि बजाते समय लय में बजाना अति महत्व का होता है। कोनसे बोल पर वज़न देना उसकी नजाकत

कैसी है उसपर कोई आँच नहीं आनी चाहिये। थक जाए तो निश्चित ही उस पर असर तो होगी ही।

सर ने अपने अनुभव व्यक्त करते उसे उसे बताया, मैने ऐसे रियाज़िओं को देखा है कि वे लगातार रियाज़ करते है आराम न लेते हुअे निरन्तर बजाते है और ऐसा वे इसलिए करते है क्योंकि उनके गुरु का आदेश होता है और उसे वह करना पडता है। ऐसे गुरु मीलने पर उनके अज्ञाकारी शिष्य के लिये सिध्दि प्राप्त होना मुश्किल हो जाता है। सर कहते है कि रियाज़ करने के लिये एकांत स्थल ही पसंद करना चाहिये। क्योंकि रियाजी को रियाज़ करते समय बाहार से आनेवाले शोर गुल से रियाज़ में खलेल न पड़े। ऐसा करते समय आपके आसपास कोई भी न होने के कारण वादक खुदका ध्यान वादन में केन्द्रित कर सकता है। श्रेष्ठ वादक का कर्तव्य है कि वह वादन का ध्येय निश्चित करे। खुदके वादन में रही हुई क्षति को दुर करे। वादक को स्व-विश्लेषण करना चाहिये और अन्य के सामने भी उदाहरण रखना चाहिये, स्वयं की क्षतिओंका विश्लेषण करने के बाद आप अनुभव करेंगे कि आप 'स्व'के लिये बजाते हैं। 'पर' के लिये नहीं। यहाँ ध्यान रखना चाहिये कि भूतकाल में गुरुजन रियाज़ करने के लिये रातका समय पसंद करते थे, और एकांत स्थल पसंद करते थे जैसे स्मशान जिसमें शोर नहीं होता। महत्व

पूर्ण बात यह भी है कि वादक नरम हाथसे रियाज़ न करे रियाज़ करते समय मजबूती से बजाये। बोल बजाते समय उगंलियों में जान डालकर बजाये इसमें तबले के बोल स्पष्ट सुनाई पड़े। जादातर मजबूत आघात से श्रोताओं को स्पष्ट सुनाई देगा। अगर वादक बडे मुँहवाला तबला उपयोग में ले तो वह अधिक प्रभावशाली और जादा फायदे मंद हो सकता है और उससे तबले का नाद और गहरा हो सकता है। प्रारंभ इस प्रकार हो ताकि वादक ऐसे बोलो को प्रमाण में चुने जो सहजतासे बजे और ऐसे बोलों का रियाज़ करे जैसे पेशकार कायदा से प्रारंभ करे। यह करने से वादक की उंगलियो का आकार भी सुंदर होगा और ज्यादा रियाज़ करने से वादक की उंगलिया अच्छी तरह से फिरत ले सके। जैसे कोई गायक खुदके आवाज़ मे हरेक स्वर को गा कर तैयार करता है और अपना गला तैयार करता है, उसी तरह रियाज़ से वादक के हाथ की प्रत्येक उंगली को व्यायाम मिल सके। वैसे देखा जाये तो तबला वादन में सिर्फ बोलों को महत्व नहीं दिया जाता है,किंतु संपूर्ण रचना का रियाज़ किया जाता है । वादक संपूर्ण रचना आकारबध्द विभागों में विभाजित करता है और हरेक विभाग का मनःपूर्वक अभ्यास करना अत्यावश्यक है। उसके बाद हरेक विभाग का एकत्री करण कर संपूर्ण रियाज़ करना चाहिये। प्रथम पहले विभाग के दुसरे विभाग को जोडना, बादमें दुसरे को तीसरे से

ऐसा करते आगे बढ़ना चाहिये और सम्भव हो तो हरेक विभाग का रियाज़ करने के बाद संपूर्ण रचना बजानी चाहिये। इसे एक उदाहरण दे कर समझाता हूं। निम्न कायदा जो त्रिताल में निबध्द है।

धाती धागे नधा तीरकीट धाती धागे तींना कीना ।

ताती ताके नता तीरकीट धाती धागे धीना गीना ।

इसी तरह से नौसिखिया विद्यार्थी को आगे बढ़ना चाहिये। पहले सिर्फ धाती बजाने का ही अभ्यास करो बाद में धागे का अभ्यास करो। जब धागे बजाने से संतोष मिले तभी आगे बढ़े याने धाती धागे बजाऐ तथा उसे बजाते रहो। फिर उसी तरह से नधा और तीरकीट का अभ्यास करते रहो। पहले सिर्फ इसका ही अभ्यास करते रहो और बादमें चारो बोलो को साथ में बजाना, और इसी तरह से बाकी के बोल बजाने का प्रयत्न करे। जब तक वादक को संपूर्ण कायदा बजाने का संतोष न मिले तब तक उसे बजाते रहो। इसी तरह से रोज रियाज़ करेंगे तब आपको उसका पूरा संतोष जनक परिणाम मिल पायेगा।

गति के नियम और कानून :

संगीत क्षेत्र की जितनी भी विधाएं हैं, उसके आद्य गुरुओने ऐसी हजारों रचनाऐ निर्मित की है जिसका अभ्यास जिसका अभ्यास हम लोग निश्चित गति और निती नियमितरुप से करते है। हर कोई बोल एक सरखी लय से न भी बजा सके। वादक जो ध्यान पूर्वक नियमों को न परखे तो उस वादक को बहुत कठीनाई हो सकती है। एक सामान्य उदाहरण देखिये। सर कहते है कि कसरत करते समय दंड, बैठक की तरह से योगासन उसी गति से नहीं हो सकता या ने जोर लगाने में गति होती है किंतु योगासन कम गति से ही होता है। हम तबले के बारेमें सोचे तो पेशकार को जल्द गति में नही बजा सकते है। क्योंकी पेशकार के बोल ही ऐसे बने है कि जल्द गति में नहीं बजा सकते उससे उंगलियाँ फँस सकती हैं और उंगलियोसे बजा भी नहीं सकते। आजके जमाने में कई वादक हर रचना को अति द्रुत लय में बजाने की चेष्टा करते है किंतु मुल रचना को ध्यान में न लेते हुए और व्यवस्थित अभ्यास न करते हुए सिर्फ द्रुत लय में बजाते है तब सिर्फ हवा में बोल सुनाइ देते है याने कोई भी बोल स्पष्ट सुनाई नही देते,स्पष्ट रचना न बजाकर सिर्फ बोंलोको गति में बजाना यानी सिर्फ शारीरिक कसरत ही

मानना चाहिए। उससे सिर्फ अविचारी नाद उत्पन्न करना, यही हो सकता है।

तबला वादन यह भी संगीत का एक भाग है। जेसे कर्णप्रिय संगीत के आस्वाद के लिये यहाँ भी नियम होते है। और नियमों का पालन करना पडता है। और कलाओं की तरह यहाँ भी कोई रचना के पीछे वादक के मनोमन भाव,आवेश मूलभूत रीतसे अत्यावश्यक है। इसके बावजूद कोई वादक को अति द्रुत लय में तबला बजाने का शोख रखता हो तो उसको सिर्फ कायदे और रेला बजाने का प्रयत्न करना चाहिये जिससे उसका विकास द्रुत लय में हो सके। एसे वादक को कायदे और रेला ही संतोष दे सकते है। तिहाई, चक्रधार, टुकडा, त्रिपल्ली, फरद ये सभी रचनाऐ मूल रचना को अबाधित रहकर किसी भी तरह का नुकसान न होते हुअे उतनी ही स्पष्टता दिखाकर द्रुतलय में बजा सकते है। किंतु ऐसी रचना ऐं रियाज़ की शुरुआत करने के लिये नहीं है। यानी प्रारंभिक वादन के लिये नही है।

गति में विविधता :

आम तौर से सिखाउ तबला वादक को अपना रियाज़ कम लय में करना चाहिये। ऐसा करते समय हरेक वादक को बारीकी से सुनना चाहिये

ताकि जो भी बोल बजता है उसका नाद सही रूप से निकलता है या नहीं उस पर ध्यान देना चाहिये। जब भी तबलावादक अपना तबला बजाते समय ध्यान पूर्वक सुने कि जो भी बजता है वह कर्णप्रिय सुनाई देता है कि नहीं। इन सभी मुद्दो को ध्यान में लेकर वादक अपना आगे का अभ्यास प्रारंभ करे। इससे आशा और सांत्वना मिलती है। आगे चलकर धीरेधीरे गति को आगे बढ़ानी होती है। एसे करते फिर कोई पसंद की हुई रचना को खुद समझकर उसे गति में बजाने का रियाज़ करना चाहिये। किंतु बोल बजाने की गति शुरुआत से ही बढ़ा दे तो उसका परिणाम निराशाजनक मिलता है। सर कहते है की उत्तम तबला वादक बनने के लिये धैर्य होना अत्यावश्यक है। वादक गति में बजाने का मोह छोड दे और धीमी गति में जहाँ तक बजाना हो उसे बजाते रहे। एक अच्छे तबला वादक के रूप में हरेक पहलू को जानकर उसे लय में रखकर बजायें और बोलो का सुस्पष्ट रूप और उसका आकार बना रहे यानी सही ढ़ाँचा बना रहे, उसपर सविशेष ध्यान दे। और हमेशा ध्यान रहे न की रचना करने वाले गुरुजनो को आदर्श विद्यार्थी हमेशा प्रभावित करता है। सोच समझे बिना किये हुए अभ्यास को बेढंगा अभ्यास कहते है। ऐसे अभ्यास याने रियाज़ को कोई महत्व नहीं होता है। रियाज़

करने के लिए जो भी निती नियम निर्धारित किये गये है उन्हें दोहराना अत्यंत अवश्यक होता है।

रियाज़ करते समय श्वसन का गति में होनेवाला फर्क :

ऐसा कईबार देखा जाता है कि तबला वादक रियाज़ करते समय थोडी देर में पसीने से तरबतर होता है ऐसा उत्तम तबला वादको के साथ भी होता है। सर के मतानुसार इसकी वजह निम्न कारणोसे हों सकती है।

१ रियाज़ करने का स्थल वादक के स्वभावनुसार न होना, अर्थात वहाँ का वातावरण नमी युक्त या साफसुथरा नहीं हो।

२ वादक के अंदर जो डर पैदा होता है उसमें महत्व की बात यह है कि साथसंगत करते समय बाजपर या सामने कोई महान संगीतकार की उपस्थिति हो, जिससे वादक को डर के कारण पसिना आ सकता है।

३ वादक में पध्दति अनुसार रियाज़ करने का अभाव

४ वादक के अस्थिरतासे लय को बांधने के कारण :

५ वादन करते समय वादक को अपनी बैठक उचित न मिलने पर।

उपरोक्त कारण के अलावा एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि वादक वादन करते समय हाथ की गति और श्वसन लेने की गति में समानता नहीं

रख पाता। रियाज़ करते समय श्वासको ऐकदम सामान्य गति में लेना चाहिये। हाथ की गति याने वादन की गति बढ़ाते समय श्वास की गति नहीं बढ़ानी चाहिये। सामान्यता ऐसा देखा जाता है कि रियाज़ करते समय हाथ की गति और श्वास लेने की गति भी बढ़ती है ऐसा करना गलत है।

सर कहते है मै रियाज़ करते समय तथा अन्य कलाकारों के साथ संगत करते समय बहुत ख्याल रखता था। इसलिए मै कभी थकता नहीं था। में यहाँ पर खुदकी तारीफ करने के लिए नहीं कहता हुँ बल्कि जिन बातों को महत्व नहीं दिया जाता, उन्हें स्पष्ट रुपसे समझाने के लीए कह रहा हूं। जब कोई सितार वादक या सरोद वादक झाला बजाता है तो उसकी गति तीव्र होती है। संगत करनेवाले के साथ वादक जो बात मैने आगे बतायी है उसके बारेमें उसको पता नही हो तो वो झालेकी गति जैसी अपनी श्वास की गति बढ़ायेगा और ऐसे करने पर उंगलियों पर उसका काबू नहीं रहेगा। वादक थोडी देर में थक जायेगा। यहाँ पर यह बताना आवश्यक यह है कि प्रतिदिन का रियाज़ करते समय श्वसन पर काबू पा लेना अत्यावश्यक है। यहाँ एक बार फिरसे बताना चाहूंगा की ऊपर बताये हुऐ तमाम आवश्यक बातों को वादक अपने गुरु के पास सिखने से वह अल्हादकता का अनुभव कर मुग्ध हो जाता है।

अनुशासन पूर्ण जीवन और अच्छा स्वास्थ्य :

उपरोक्त सभी पहलू का विचार कर किसी भी तबला वादक के लिए अच्छी रचनाओं का भंडार इकठ्ठा करने के लिये, अनुशासन पूर्ण जीवन पध्दति और अच्छा स्वास्थ्य इन दोनो को उसके जीवन में महत्व देना आवश्यक है। सर कहते है की कोई भी तबला वादक को कुस्तीबाज नही बनना है। किंतु प्रतिदिन के रियाज़ करने के लिये उसकी शारीरीक अवस्था सक्षम बनाने के लिये उसे अच्छा स्वास्थ तो रखना ही पडेगा। शारीरिक स्वास्थ्य पाने के लिये रियाज़ करना यह भी उत्तम प्रयास हो सकता है। आम तौर पर तो भूखे प्यासे रहकर,आराम के बिना जो वादक रोज़ दस से बारह घंटे का रियाज़ करे तो उसे शारीरिक कसरत ही कह सकेंगे। ऐसा करने पर वादक की उंगलिया मजबूत हो सकती है किंतु शारीरिक स्वास्थ्य शिथिल हो सकता है और अंत में उसके रोजके रियाज़ करने पर बुरा असर पड़ सकता है।

सिल्ला चिल्ला :

इन दोनो का अर्थ और उसका महत्व एक समान ही है। सर के मतानुसार इन शब्दो में से चिल्ला कहकर उद्‌बोधन करना योग्य माना जायेगा। किंतु घराने के तबला वादक सिल्ला कहकर उद्‌बोधन करते है।

दिल्ली घराने के वादक उसे चिल्ला कहकर उद्‌बोधन करते है। इन दोनों शब्दो का अर्थ ऐसा होता है कि जैसे अधिक मास में भारतीय धार्मिक लोग चालीस दिन के लिये एकांत में जाते है उसी प्रकार मुस्लिम मस्जिद में जाते है। ऐसे लोग इन दिनो में उपवास या रोजा रखकर खुदको जप, तप या बंदगी में व्यस्त रखते है। उसी तरह तबले में चिल्ला याने चालीस दिनतक संपूर्ण योजना बध्ध तरीके से रहेना और उसका रियाज़ करना। इसका मुख्य हेतु या विचार कई दिनो तक रियाज़ करने के लिये होता है। इसका मुख्य उद्येश्य यह होता है कि वादक सिर्फ वादन में ही ध्यान दे और उसका लगाव निर्माण करने हेतु ही होना चाहिये। अच्छे तबला वादक का वादन की हरेक शैली का अभ्यास अनिवार्य है। सर कहते है में एक बार दोहराना चाहता हुं कि उत्तम तबला वादक बनने के लिये योग्य लय, वादन में स्पष्टता, हरेक विभाग में योग्य रुपसे किये गये भाग, मूलतः जो भी रचना है उसका आकार जैसा है वैसा रहे, यह अत्यंत महत्व का है। वैसे देखा जाये तो वैचारिक दृष्टिसे चिल्ला यह वस्तुता जो कलाकार सिर्फ तबला वादन को अपने व्यवसायिक की दृष्टि से चुनता है यानी स्वीकार लेता है उनको ही मदद रुप साबित होता है। किन्तु तबला वादन की शुरुआत करने वालो के लिये थोडासा कठिन होता है।

पसंदगी का रियाज़ - चुनिंदा रियाज़

कोई भी तबला वादक जिन रचना की उसे जानकारी होती है वे सभी रचनाओं को रोज नहीं बजा सकता। इसके लिये बुध्दि पूर्वक हरेक रचना के लिए समय निकाल कर उसका रियाज़ करना चाहिये। जो वादक खुद पसंद की हुई रचनाओं के भंडार, जथ्ते को योग्य रीतिसे बजा सकता है तो आगे की रचनाओं की और बढना आसान होगा। किंतु इस क्षेत्र के अंदर नये तबला वादक की मुश्किल यह है कि इनको कम समय में उच्चस्थान पर बढ़ना है। यह मनुष्य का स्वाभाविक लक्षण है। खास कर नवयुवानों में, वे जोशीले उनके अंदर यह ख्याल दिखाई पडता है। किंतु अन्य क्षेत्रों की तरह ही इस क्षेत्र में भी धीरज रखना अत्यावश्यक है। और धीरज यानी स्व को काबू में रखना यह भी कसरत ही है। ऐसा न करे तो वादन की लय को काबू मे रखना कठिन हो जायेगा। किंतु हाल के व्यस्त जीवन में रियाज़ के लिये इतने घंटे निकालना यह बहुत कठिन है। सर ने कहा कि किसको कैसा और किस तरह से वादन करना है, कितने दिन वादन करना है, इसकी न्यायिक पसंदगी करनी चाहिये।

आराम का महत्व :-

थोडी शांति भी वादक के लिए जरुरी है। यह सिर्फ थकान दूर करने के लिये पर्याप्त नहीं है। किंतु सतत वादन से हुई थकान दूर करने का पर्याय है। वादक १५ दिन या सप्ताह में एक दिन वादक विराम करे ओर इस दरम्यान वादक वादन को एक और रखकर केवल पढ़न पर ध्यान केंद्रित करे, इससे वह विराम बाद दूसरे दिन नये जोश और उमंग से रियाज़ कर सकता है। यहा नोंध करना अत्यावश्यक है कि अपनी मर्जीसे लिया हुआ विश्राम रियाज़ करने में समय बिगाड़ता नही है। वादक रियाज़ के दरम्यान खुदने क्या किया इसका सतत चिंतन करें और उसका अर्धजागृत मन करता ही रहता है।

जो भी बात ऊपर बतायी है वह मैंने मेरे व्यक्तिगत अनुभव से तथा एक चपल तबला वादक बनने के लिये बरसों से इस क्षेत्र में शिक्षक के रुप से देखी है।

रियाज़ करने में होने वाली दिधा :

अंत में रियाज़ करते समय आने वाली बाधाओं का यहाँ जिक्र करना आवश्यक है। वादक की आन्तरिक क्षतियों के कारण रियाज़ करने में विघ्न

आना सम्भव होता है। ऐसा भी हो सकता है कि वादक को जो भी सिखाया जाता है,उसके रियाज के समय विघ्न आ जाये, इसी समय विद्यार्थी द्विधा का अनुभव करता है। एक ओर वह अपने गुरु की क़ाबेलीयत,योग्यता पर शंका भी नहि कर सकता है और नहीं किसी को मुक्त रीतिसे कह सकता है। दूसरी और वादक जो सचमुच कला का उपासक है इस कारण वह रियाज़ का त्याग भी नही कर सकता। और इससे उसके पास सिर्फ दोही रास्ते होते हैं। एक तो वह प्रयत्न कर स्वयं भूल समझे और दूसरी बात उसका गुरु कोई आंतरिक आशय से निकास से सम्बन्धित खानगी बोलो को किस तरह से बजाना चाहिये ऐसा न सिखाय तो उसे और जादा मानधन दे कर उसे हांसिल करना चाहिये। ऐसा करने के बाद भी अगर वादक को ऐसा लगे कि उसकी उंगलियाँ कोई विशिष्ट बोल बजाते समय दुख रहीं हो तो ऐसा मान लेना चाहिये कि वह गलत रियाज़ कर रहा है। तुरंत अपने सलाहकार को पूछकर उसका कारण खोज़ना चाहिये अगर सलाहकार का शाब्दिक सूचन आपको मददरूप न हो सके तो तुरंत जब गुरु बजाते समय हमें जो रचना आती है और उस रचना को बजाये तब उसे ध्यान पूर्वक सुनना और देखना चाहिये। वादक को अपने गुरु क्या बजा रहे है कैसे बजा रहे है और वही रचना खुद बजाते थे तो उस समय उसका तुलनात्मक

अध्ययन सुक्ष्म रुप से करना चाहिये। और उसका चितंन और मनन करना चाहिये। जब गुरु बजाते ,वादन करते है तब सम्भव हो उतना उसका अध्ययन करना चाहिये और गुरु किसी रचना को गति से बजाते है याने द्रुत लय में बजाते समय उंगलियाँ किस तरह से तबले पर चलती है उसका अध्ययन विद्यार्थी को करना चाहिये। गुरु जब बजाते है तभी शिष्य अपना ध्यान उस पर केंद्रित कर बारीकी से देख ले और इसमें शाब्दिक सुचना भी उतनी ही महत्व की है।

वेसे देखा जाय तो यह एक ललित कला है। जिसके वादन के व्यक्तिगत निर्णय उसकी धीरज और लगन की खूब गहरी सोच होती। साथ ही साथ इस कला की शिष्य,शिक्षक से वारंवार चर्चा करे और करनी ही चाहिये। इस तरीके से सुधीरजी अपने शिष्यों एवं तबला जगत के सभी विद्यार्थीगिण को सही मायने में रियाज़ किस प्रकार से करना चाहिये ओर उसकी कठिनाइयाँ का सामना किस प्रकार से करना चाहिये उसका निराकरण भी कहा है।

५-५ PRINCIPLES OF COMPO ITION:

A close, analytical look at the compositions of the different gharanas given in the previous chapter, and at my own repertoire, has enabled me to seize some definite principles which determine composition in the field of rhythm, without, of course, exhausting the creative potential of this art. It is precisely these principles that I propose to discuss in this chapter.

As the very outset, however, I would like to focus on an important point. A new composition can dawn upon the mind quite suddenly, instead of resulting from a long conscious effort of trial an error. Such creative flashes, however, occur only in the case of those who already possess a rich repertoire, and whose minds have become saturated with the spirit of rhythm, as a sequel to long and loving fellowship with the art. The well known aesthetician Croce, I am told, emphasized the supreme role of intuition in art-making. Now, in so far as I am not an aesthetician myself, though I can claim to have some aesthetic sense, I am not aware of how exactly Croce argues for his emphasis. Nor do I know what intuition relay is. But if it also means suddenness of the way in which some thought, some insight, or an impulse may come to the mind, I can vouch for the truth of the emphasis in question, strictly in the light of my own humble experience of

creative work in the field of rhythm. What has happened to me repeatedly is that, quite without any intention to compose, suddenly a tuft of alphabets flashes upon the mind – I do not know from where, and because of what; and then its own aesthetic demand and my own familiarity with rhythm as performing art jointly make for its flowering into a whole composition wholly in the mind, that is, well before any try to actually play it in the tabla. And all this takes place while I am engaged in some humdrum activity, such as ambling in the market. Of course, I cannot say that sudden or immediate, effortless awareness is confined to art-making. Even in daily life, if two things put side by side, do we take time in sensing whether they are similar or different? But those intuitive flashes which make for the creation of beautiful forms are surely distinctive of a life of intense, personal commitment to some art.

I indeed feel sure of one specific fact. Authentic creative work in the field of rhythm is just not possible if one has not already assimilated, over a period of years, the essence and vermiform working of rhythm. The essence, here, is no merely evenness of pace, but its active regulation which (also) means management of variation within an overall order. This is exactly what distinguishes time as rhythm from clock time on the one hand, and from our everyday experience of time (or lived time) on the other. The ticks of the

clock occur at an even pace, and never deviate from it, that is, till before some mechanical defect occurs. But this is not the way of time as we actually experience it in daily life. On a particular day when we have nothing to do, time seems to pass very slowly. On busy day, contrarily, if we have to work ceaselessly and complete many tasks, each within a prefixed time limit, the end of the working hours may seem to come a bit too quickly. Similarly, in the region of rhythm, our sense of the passage of artistically created time can vary greatly; an, what is more, here too the orderly regulation of pace is both segmental and overall. The former is provided by vilhags (in the case of the basis cycle) and by jatis (in the case of patterns); and the latter (that is, overall) by two factors. The first of these is the norm of the pattern's seeming self-completion at the same – or at lease an ideal indication of the focal beat through a skillfully designated avoidance of it; and the second determinant of overall regulation of pace is the individual player's own essential hold over the flow of laya as expressed in quickening a tuft of bols or decelerating the pace of another, without any wobbling or harm to the basic laya.

At this point, however, I find it necessary to make the following clarification remarks.

(a) The concept of jatis is the only thing which I am able to pick from our traditional theory of tala, partly because I do not know Sanskrit, and partly because I have not seen any tabla maestro relating to his own manner of playing any such concept as that of the ten pranas of tala.

(b) Further, I have preferred to speak of the pattern's self completion, not of mere completion, at the sama. In saying so, I want to emphasize two points: first, the inner dynamics of the composition itself; and, second, the aesthetic centrality of the sama. The inner flow within the composition has to appear as moving towards an end; and the, or the sama, has to appear not as the mere terminus, but as the target or aesthetic destiny of the whole composition. This gives us an important principle of composition, namely, dynamic orientation.

(c) What, however, deserves a little more emphatic mention, because it is not commonly thought of, is what I have spoken of as the individual player's own contribution to the overall regulation of laya. I may make the point clear by inviting attention to some of the actual compositions notated in the book:

1. A kind of chalan which is also called rela quite freely on

तक	धिन	गिन	धाधा
किटतक	तक	धिन	गिन
धाधा	किटतक	तक	धिन
गिन	तक	धिन	गिन

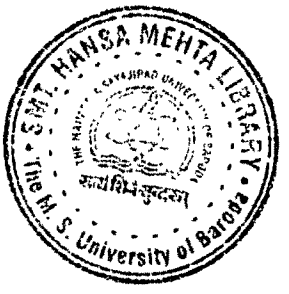

Here, the 5th and 10th beats have four alphabets each, and so have to be played at double the pace of the basic laya of the whole composition. The change in pace, it is obvious, has to be managed by the player himself without letting the transition appear abrupt or awkward. Another illustration of the point in question is provided by a composition of 17 beats which has to be played in such a skilful manner that it may cover only 16 beats

धागेनति	टधागेन	धिनागिना	धिटधागे	
नधिनागि	नधागेन	धिटधागे	नधिनागि	(१७ मात्रा)
नाताकेन	तिटताके	नातिनाकि	नधिटधा	
गेनधिना	गिनाधागे	नधिटधागे	गेनधिना	गिना ऽ

धागेनति	टधागेन	धिनागिना	धिटधागे	गेना
धिनागिना	धागेनधि	टधागेन	तिनाकिना	(१६ मात्रा)
ताकेनति	टताकेन	तिनाकिना	धिटधागेन	
धिनागिना	धागेनधि	टधागेन	धिनागिना	

Laya, however, is not the only thing in a rhythmic composition; it has a filling of bols too; and it is with this in mind that I put forward the following general principles:

1. ARTICULATION :

This word is here to be taken to mean the act of uttering or producing distinct sounds even they are quite close to each other. The reference, here, is to both padant (and recitation of bols) and actual playing. Applied to tabla playing padant articulation would mean clarity in the nikas (or execution) of individual bols. This would require that only those bols are put alongside of each other which do not tend to bedim mutual distinctness.

I may also add that an important way to heighten articulateness or the mutual distinctness of bols is accentuation. Thus, as it common knowledge, in the following (Japtala) thekaka of 10 beats.(example)

धिन ना धिं धिं ना । तिंन ना धिं धिं ना

Here, every dhin has to be played a little forcefully, and na and tin have to played (or spoken) a little softly, though not of course unclearly. In other words, what is here to be regulated is or the force of impact of paying at the drums. This, incidentally, applies not only to very rhythm cycle, but to the every rhythmic composition. Without a proper distribution of emphases, all

playing would appear anemic or spiritless, or thanda, bejan, murda, as we say in popular parlance.

2. Playability and tonal appeal of bols :

Further, mere correctness in respect of the number of matras covered is not enough to ensure good playing. The collocation of bols has to be playable too without undue strain. Consider, for instance, the following (attempted) composition in a stretch of 16 beats;

Example.

धिट धिट तागे तिट क्ड़धि तिट तागे तिट

धिन गिन गदि गन तक्ध्ड़ान क्डांन तकिट (धाः सम)

Here, 16 matras have been duly conversed by the syllabic filling, but the filling itself is not playable in its recent sequence.

It has also to be borne in mind that the bols of our rhythm are not only played, but recited. They should not sound funny when uttered. So, whereas titghidan is all right, tittitan and dhidhdhidhan) are forbidden, so to say.

3 The norm of articulation makes another deman on the player. It is, we have said, helped by accentuation. So, naturally, some bols

have to sound louder than others. But, however emphatic be the sound of some bols, the playing, as a whole, has to look effortless and controlled. Such a look may be said to be mellow. It comes after long years of practice. I here feel impelled to cite a remark which I have often heard from masterly tanla players of some gharanas:

> In the beginning of one's playing career, bols have the thickness of a rope; later, as reyaz progresses, they come to acquire the softness of silken threads.

However, softness may not be all along here in actual playing. A look of effortlessness is a mote binding requirement.

4 Segmentation.

Qualities like the softness of an individual bol or the international waywardness of the manner it may relate to the basic lays as perceived by the rasika's ear, are however not the same thing as the ease with which a bunch of some bols may be comprehended by the mind. The latter calls for a proper articulation (not division or disruption) of the whole pattern into shapely segments; and it is here that the Gestalt laws of perception – such as those of proximity, similarity, contrast, and common destiny or coercive

design come into play. In a bol like नगनग , both similarity and proximity facilitate its comprehension as a single unit,. Though it comprises four leter. This is very different from attending to a word of four letters, such as one, partly because the emphasis here, generally, is on getting the meaning of the word – that is, conveying some meaning- can be achieved by merely reading it quietly. The purpose a bol of rhythm, on the other hand, is not at all achieved unless it is sounded for the listening ear. The principle of contrast here works not only as the opposition of closed and open bls, as in the case of where and are clearly dissimilar to and but a the transposition of bols as in the case of Here, however the two groups not only oppose, but also balance each other, because both comprise found letters each, and are expected to take an equal length of time.

In respect of segmentation, however, the following additional points are also noteworthy:

(a) What we have called a segment – that is, not any part, but a section or group of bols having a look of some self-completeness about it – appears so only to him who is able to follow the basic laya of the whole pattern; otherwise, they will appear mere

fragments. Not segments that is such part as are actually sensed as making for a whole, in virtue of the very laya at which they are played. The rasika cannot afford to slacken his grip over the basically even for moment. In a single, undivided act of attention he has to follow both the temporal (that is, relating to time) extent and manner of flow (and varying sound!) of the bols and the unheard – because not here played as a matrix – but always remembered basic pace or laya. From this point of view, discriminating perception of the play of our rhythmic patterns may be said to be bifocal, in a way.

(b) This at once makes a heavy demand on the playing artist too. He has to keep the relation between the pace of the pattern and the basic pace (initially established by the theka) identifiably clear (in principle) all along. Otherwise, the very essential condition of out relish of the varying design of our patterns will disappear; and the listener will have to content himself with, and admire only such merely heard and seen (not understood) and superficial (if necessary) features and occasional alternation of loud with whispering sounds. The theka is a theka not merely because it can be straight away made to open a solo recital, not ev3en because it

just provides rhythmic support to a musician at work, but because it is the anchor of our entire artistic creation and aesthetic enjoyment of rhythm. Composition is here the vital requirement; and in the case of our rhythm, it is not simply a matter of what bols are put together and how , but of how the whole collocation of bols (as a pattern) relates to the basic laya.

(c) Segmentation of a long collection of bols may also be helped by the use of what may be called rhythmic end-rhythmic end-rhymes (or quafiya radeef) as in the cae of an authentic quaayeda. To take an example, in the case of composition No.56 on (page No.16 3), all the four lines and with the same bunch of bols, namely, trakdhingin . This is likely to remind readers of end-rhymes in poetry.

But , at this point, we may mark a difference too. Where a poem builds upon blank verse, quite a few of its lines do not appear clearly complete in meaning, though they surely get rolled into the unity of the pome's overall import. In our rhythm, on the other hand, every pattern has either to end sharply at the sama – that is, the focal beat - or to slight overstep or fall short of it so designedly that the very incompliance of the end of the patter as placed may

heighten a knowledgeable listener's sense of the set location of the beat in question. My reference, here, is to patterns of attend angst variety.

Outer completeness and distinctness of properly disposed bols on the inside are so necessary features of out rhythm that the definition of beauty as unity in variety is perhaps nowhere as aptly applicable as there. The definition I speak of is, of course, not relevant to every case of beauty. A ruby may strike us as irresistibly beautiful; but will this impression reveal any inner differences in the gem-stone? Not at all. The case of rhythm is different; and it is not without reason that our Outwards of old, unlettered though they might have been, would always insist on the supreme importance of wholeness of design and clarity of inner accents, and would therefore abstain from playing at hectic sped where clarity and manifest wholeness of from both give way to fuzziness.

Today on the other hand, even regular critics seem to prefer sheer fluency to other excellences of the art of rhythm. They seem to be oblivious of the truth that if rhythm is as art, which (I have argued) it assuredly is, it is primarily because of its emphasis on

the two excellences I have just put in italics, in the previous para. But, I hasten to add, rhythm is just not covered by the view which regards art as essentially an expression, be it organized or just a spontaneous spill-over, of the artist's immediate or recollected emotions. Our rhythm as such is at no point an expression of any designable emotion, such as joy, sorrow or anger, though it can certainly be adapted to heighten the emotive look of vocal music where such music where such music seeks to express some emotion. Four instances, where what is being sung is a composition in raga adana, which is expected to evoke a semblance of velour, the tabla player may well add to the overall effect by resorting to forceful manner of playing. Yet were may note, our rhythm does not build upon sounds which express some feeling, as wail may express grief. It is possible to so pick, organize and play some syllables that the whole a tern may resemble, more of less, the characteristic chirping of a bird. But that would be representation, not expression; and even representation cannot be regarded as essential to rhythm. Those who seek to regale lay audiences by playing in a way which resembles the start, acceleration and cessation of the movement of

a railway train, are mere entertainers, not table artists. But that as it may, in my fifty years fellowship with this art I have never seen a good solo tabla recital acclaimed because it has been very expressive of an emotion or truly representative of a fact, activity, or situation.

At the same time , however, our experience of rhythm is no mere listening. A segment is what it is, partly because there is an interval of quite, however brief, before the next one appears. This interval helps assimilation of what has just been heard and generates a looking-forward-to what is to come next – an expectation which is directed by he basic laya-flow. So, a rasika's listening is at once contemplation.

5 Structural Orientation:

The looking forward-to, which I have just poken of, can be helped by a measure of structural orientation in the composition one is listening to. It is noteworthy that the requisite wholeness of form to which I referred a little earlier is no inert completeness. Rhythm is an occur rent art; we see it being made; passage is its very life; but this passage has to look targeting, and not merely to end at the sama. Further, this passage is not uniform in respect of

the impact of its constituent bols. Some of these are accented; othrs are just cut out clearly. It is this variation of emphasis in the cutting of bols which, along with some other structural features, gives to out patterns of rhythm a look of aiming at, and making for the sama, instead of merely ending at it tamely, if correctly. The most common way to evoke this aesthetic semblance is to make a pattern end with a thihai. Aesthetically, I repeat, the sama has to appear as the destiny rather than as the mere terminal point of a pattern. As I say so, I have in mind the Gestalt principle of coercive design. What I here wish to emphasize is the look of orientation and the varying distribution of emphases over the bols of composition which give to rhythm Some semblance of life. In everyday life too we do not utter very word with equal force; and the listener's attention is directed, if in part, by the emphases and pauses that we introduce in our talk.

6. Aesthetic resilience:

But there is something more subtle that a player can do to make his rhythmic work appear 'alive'. He can make a pattern appear to lapse for a moment from the basic ace and then make immediate amends, somewhat like the way speaker may quickly

replace a word just used with a better one. But let me clarify the point with the help of an example. On page No.120 I have notated a quayeda which actually comprises 17 beats but has to be played in a (slightly shorter) range of just 16 beats. The bol which closes the first line in the frame of 17 beats is dhitdhage and in the 16 beats setting, it is dhitdhagena so the Na of dhagena which occurs at the 5th beat (in notation) has to be covered (during playing) in the 4th beat itself, which means that the bol dhitdhagena must be played a little more quickly, so that Na may be duly assimilated through the quickening of pace, and the normal pace of laya may promptly re-assert itself.

---

१०७ द आर्ट ऑफ तबला रिधम पृष्ठ क्र १२९ - १३८

ગાયકની સફળતામાં અમારો પણ હિસ્સો રહે છેઃ સુધીરકુમાર સકસેના

જિન્દગીમાં તાલ અને લય ન હોય તો જીવન શુષ્ક બની જતું હોય છે. તાલબદ્ધ જીવનથી શિસ્તના સંસ્કારનું સિંચન થતું હોય છે. તાલની તાલીમથી માણસ જીવનમાં ઘણું મેળવી શકે છે. સંગીતની દુનિયામાં પણ આવા જ નિયમો જોવા મળે છે. જીવનમાં જો તાલનું મહત્ત્વ હોય તો સંગીતમાં તો તાલનું મહત્ત્વ વધારે હોવું જોઈએ. કૌથમ સંગીતને સૌથી મહત્ત્વનું અંગ છે. તાલ સંગીતને ગતિ આપવામાં ઉપકારક બની શકે છે. તાલનું મહત્ત્વ આથી જ સંગીતમાં એક કરતા વધારે કારણોથી મહત્ત્વનું બની રહે છે. ગાયક-વાદિકને તાલની જરૂર પડે છે, તો માત્ર વાદ્યિંત્ર વગાડનાર વાદકને પણ તાલની જરૂર પડે છે. ટૂંકમાં તાલ સંગીતમાં અવિભાજ્ય અંગ છે. આ તાલની વાત કરતાજ આપણને તબલા યાદ આવે. આજે આપણે એક એવા તબલાવાદકની વાત કરવી છે, જેમણે તબલાવાદનની સાથે સાથે સિતારમાં એમના ગહન અભ્યાસ દ્વારા નામ રોશન કર્યું છે. આ તબલાવાદક એટલે શ્રી સુધીરકુમાર સકસેના. ઘણા વખતથી મનમાં વિચાર આવતો કે એમની મુલાકાત લઉં, એમની વાતો આપણા પત્રના સુજ્ઞ વાચકો માટે રજૂ કરું. એ આશા ફળીભૂત થઈ, આ રહી એ મુલાકાત, આ રહ્યા શબ્દો.

પ્રશ્નઃ- સુધીરભાઈ સંગીતમાં લયનું અને તાલનું તમારી દૃષ્ટિએ કેટલું મહત્ત્વ છે.?

જવાબઃ- તાલ દૂર કલાકારની આવડતની ખબર પડી શકે. તાલ વગરનું સંગીત અધૂરૂ ગણાયું છે, કારણ કે તાલથી જ ગાયન અથવા વાદનમાં જતન લાવી શકાય છે. તાલ ન હોય તો સંગીતમાં ગતિ નથી આવતી. જેમ ગાડી ગમે તેટલી સુંદર હોય પણ પેટ્રોલ વગર ન કામ આવી શકે, એવું જ કંઈક તાલનું ગણી શકાય. મેં તો તબલાવાદન અને તબલા ઉપર ગહન અભ્યાસ કર્યો છે, એ ઉપરથી એક તારણ કાઢી શકાય કે તાલ વગરનું સંગીત અધૂરૂ છે એટલું જ નહિ પણ તાલ એ સંગીતનો પ્રાણવાયુ છે. નાળી પાડવા જેમ બે હાથની જરૂર પડે છે તેમ ગાયનને તાલબદ્ધ બનાવવા તબલાની જરૂર પડે છે.

પ્રશ્નઃ- તમે કોઈ ગાયક કે વાદ્યિંત્રવાદક સાથે સંગત કરો ત્યારે કેવી લાગણી થાય છે?

જવાબઃ- સંગત કરતી વખતે એક નહીં, અનેક ગાયક વાદિક કે વાદકને મળવાની તક મળે. ગાયકની સફળતામાં અમારો પણ હિસ્સો રહે છે. કેટલીક વખત એવું બને કે ગાયક સુર ચૂકે કે બે તાલો બને ત્યારે સંગત કરનારે ગાયકની નબળાઈ ઢાંકવાનો પ્રયત્ન કરવો પડતો હોય છે, અને એમાં કશું ખોટું પણ નથી. એ જ પ્રમાણે જો તબલા વાદક કોઈવાર ખોટો તાલ આપે તો ગાયક અકળાઈ પણ જાય.

પંચમ વેદ : સંગીત

મંજરી પરીખ

પ્રશ્નઃ- તમે કયા કયા ગાયક અને વાદક સાથે સંગત કરી છે?

જવાબઃ- આજે તો હવે ઉમ્મરને લીધે પહેલા જેટલું તબલાવાદન નથી થતું, પણ મેં ઘણા મોટા કલાકારો સાથે સંગત કરી છે. સ્વ. ઉસ્તાદ કૈયૂમ ખાં સાહેબ, અમીરખાં ઉસ્તાદ બડે ગુલામ અલી ખાં, કે ભેગમ અખ્તર જેવા મહાન ગાયકો સાથે વગાડવાની મને તક મળી છે. તો વાદ્યિંત્રવાદકોમાં પંડિત રવિ શંકર, ઉસ્તાદ અલી અકબર ખાં, નિખિલ બેનરજી જેવા સાથે પણ તબલાવાદન કર્યું છે. તબલા એ એક કરતા વધુ કલા સાથે સંકળાયેલા છે. નૃત્યમાં પણ તબલાની જરૂર પડતી હોય છે. નૃત્યાંગના રોશન કુમારી કે નૃત્યકાર શંભુમહારાજના નૃત્યો સાથે પણ મારું તબલાવાદન જરૂરી સમજાયું હતું. આમ તબલાવાદન અનેક કલાકારો સાથે સંકળાયેલું છે.

પ્રશ્નઃ- તમે તબલાવાદનમાં કુ વગાડવું વધુ પસંદ કરો છો?

જવાબઃ- કથ્થક, ઓડિસી, ભરત નાટ્યમ વગેરે વગાડવું ગમે, પણ દરેક કલામાં સિતાર ખૂબ જરૂરી છે. કયાં અને કેવી રીતે છેડો લેવો તેનું જ્ઞાન હોવું જોઈએ. અત્યારે ફાસ્ટ ટેમ્પોવાળું સંગીત વધુ ચાલે છે. આજના ગાયક-વાદિકોને ખેમટો-કવ્વાલી-ઠાદરા અને રૂપકમાં ગાવું વધુ ગમે છે.

પ્રશ્નઃ- તમને નથી લાગતું તબલાવાદનમાં તમે કલાને સિમિત બનાવી દો છો.

જવાબઃ- બિલકુલ નહીં. તબલાવાદન સંગત અભ્યાસ માટે છે. આમાં તો વાદકે સંગીત-નૃત્ય વગેરે કલાના કલાકારની કલાને ઉપ્લવ આપવામાં મદદરૂપ થવાનું હોય છે. તબલાવાદનની કલામાં કેટલું ઊંડાણ છે એ તો અભ્યાસ કર્યા પછી જ ખ્યાલ આવી શકે. આ કલા જેને જ્ઞાન હોય તે કલાકાર કોઈપણ કાર્યક્રમમાં પોતાની આગવી દૂર ચમકારો બતાવી શકે. જુગારનું પ્રત્યેક કલુસલુ જેમ સર્જનહારનું કાવ્ય છે, તેમ સર્જનહારનો પ્રત્યેક તાલ એ કુદરતનું તબલાવાદન છે.

પ્રશ્નઃ- તમે કઈ કઈ સંસ્થા સાથે સંકળાયેલા હતા?

જવાબઃ- મેં વર્ષો સુધી વડોદરાની એમ.એસ. યુનિવર્સિટીમાં વાદ્યિંત્ર વિભાગના વડા તરીકે કાર્ય કર્યું. હાલમાં વડોદરામાં જ સ્થું છું. આ સિવાય આકાશવાણી દિલ્હી અને કલકત્તામાં પણ મારી સેવા આપી. છેલ્લા ત્રીસ વર્ષથી હું આકાશવાણીનો એ ગ્રેડનો કલાકાર છું. આકાશવાણીમાં ઓડિશન દરમિયાન જ્યૂરી તરીકે સેવા આપી છે. મારા હાથ નીચે વિદ્યાર્થીઓને પી.એચ.ડી. માટે માર્ગદર્શન આપવાની મને તક મળી છે. "તબલાવાદનની કલા" "અજરદા ઘરાનાના તબલા" વગેરે પુસ્તકોમાં પ્રદાન આપ્યું છે. આ સિવાય તબલાવાદન પર આકાશવાણી અને અન્ય સંસ્થાઓમાં વાર્તાલાપ આપ્યા છે.

પ્રશ્નઃ- તમે તબલાવાદનની કલા અર્થે પરદેશ પ્રવાસ કર્યો છે?

જવાબઃ- અફઘાનીસ્થાન, જાપાન, જર્મનિયા અને રશીયાના પ્રવાસે જવાનું સદ્‌ભાગ્ય પ્રાપ્ત થયું છે. ત્યાં મેં તબલાના સોલો કાર્યક્રમ કર્યા હતા, અને સાથે સાથે આ કલા ઉપર વાર્તાલાપ આપ્યા હતા. ત્યાંની પ્રજામાં, ખાસ તો સંગીતપ્રેમીઓમાં તાલ વિષે સજાગતા છે. તેઓ કલાને દિલથી ચાહે છે. આ સિવાય તાજેતરમાં જ મોરીશીયસમાં તબલા ઉપર વાર્તાલાપ આપ્યા અને તબલાવાદન કર્યું. ગુજરાત સરકારે મને "ગૌરવ પુરસ્કાર"થી નવાજ્યો છે.

પ્રશ્નઃ- તમારી ભવિષ્યની યોજના શું છે?

જવાબઃ- સંગીતે મને જીવનમાં ઘણું આપ્યું છે એટલે વધુ તો શું જોઈએ? મેં શ્રેષ્ઠ ગાયકો અને વાદકો સાથે તબલાવાદન કર્યું એનો મને આનંદ છે. તબલાના તાલની જેમ જીવન સંગીત વાગતું રહે અને ક્યારેય જીવન બેતાલું ન બને એવી પ્રભુને પ્રાર્થના છે. બાકી તાલબદ્ધ જીવન એ જ મારો આદર્શ રહ્યો છે.

સ્વભાવે નમ્ર, નિખાલસ એવાં શ્રી સુધીરકુમાર સકસેના આજે જૈફ ઉમ્મરે પણ યુવાનને શરમાવે તેવી તાજ્જી ધરાવે છે. આટલા મોટા ગજાના કલાકાર હોવા છતાં ક્યાંય એમની વાતોમાં અહમ્‌ની છાંટ પણ જોવા ન મળે. સતત કાર્યશીલ શ્રી સુધીરકુમાર સકસેનાને મેં વંદન કરી એમની વિદાય લીધી.

In defense of tabla maestros of yore

Music

By G. V. MUDHOLKAR

THE 'Dupallis' and 'Tipallis', beats played in two and three different speed patterns on the Tabla, the 'Lom-Vilom bole's which read the same from either side and the 'Lal Quila Farm' following the sound of music of the historic Red Fort in Delhi are seldom played by percussionists in the solo recitals. One only hears 'Tihais' and oft-repeated 'Kayadas' nowadays indicating a steady deterioration in the field of classical instrumental music

When I pointed this out to Prof. Sudhir Kumar Saxena, 64, one of the finest percussionists of Ajrada gharana in the country and former head, Tabla department, Music college (now faculty of performing arts), M.S. University of Baroda and asked if he subscribed to this view, he replied in the affirmative.

These and various types of boles are not played now not because they are difficult or complicated but due to lack of awareness. The modern percussionists have not made sincere efforts to get access to them from various sources. And, perhaps, none would say that these types of beats are unimpressive if rendered in the right manner. Here lies the basic difference, according to Prof. Saxena, between percussionists of the present and the yester generation.

Prof. Saxena termed this difference as 'composition culture' and 'speed culture' and said "while ustads of the olden days had a good and varied stock of boles it is reverse in the case of new ones."

Though the older ustads were uneducated they cherished the desire to learn the boles of different gharanas like, Delhi, Ajrada (a small town near Meerut), Lucknow, Farukbad etc. and adhered to a particular gharana later. This helped them in knowing the positive and negative aspects of all 'schools of music.'

The so-called ustads these days neither have the inclination to learn the salient features and boles of different gharanas nor is their rendition systematic, he said. The modern percussionists have become more commercial-minded and "cater to the galleries. While the stock of boles is limited and the stress is on speed, the resultant effect is 'juggleery,' Prof. Saxena pointed out.

Unlike the percussionists of say 30-40 years ago, there is also a dearth of dedication and involvement among the new tabla players he said.

A 'gandaband' disciple of Ustad Habibuddin Khan, the well-known exponent of Ajrada gharana, he also had his training under Ustad Bundu Khan of Ajrada, Prasadilal of Delhi and Ustad Sultan Khan of Patiala. This was much before India achieved independence.

According to Prof. Saxena, his guru Ustad Habibuddin Kaan had specialised in the Ajrada style of playing Tabla as taught by his father Ustad Shamoo Khan but also learnt the Delhi gharana from Ustad Nathu Khan and the Purab gharana (whichincluded Luc-Purab gharana (which included Lucknow) from Ustad Munir Khan who taught the legendary Ahmedjan Thirakhva.

The new ustads cannot even play boles of one gharana properly, Prof. Saxena lamented. "Can some of the leading percussionists now who have specialised in 'Tirakita' and 'Dhirdhir' boles present a 15-minute solo recital minus these boles to our satisfaction," he asked.

Prof. Saxena assailed the tendency to call musicians who have presented recitals in the foreign countries in varying degress of success as 'internationally acclaimed' "For our music, we have the best judges in the country, so why take pride on getting laurels from foreigners," he said.

The standard of music examinations in the country is also on the decline. On the one hand there is a quantitative rise but on the other quantitative aspect in classical music is fast vanishing. To overcome this problem, Prof. Saxena, who is a member of the UGC committee on music and a paper-setter for M.A. examination, said the syllabus in the music institutions should be kept to minimum. "As music falls under the performing arts category, the focus should be laid more on practice," he asserted.

During his tenure at the Music College in Baroda from 1950 to 1953, Prof. Saxena had made a bold attempt and revised the syllabus for the Tabla department. This, he said, was necessary to maintain continuity. Otherwise students who reach the final year of degree or diploma, tend to forget what they had learnt in the previous years. Prof. Saxena said the students must have an earnest desire to get "real knowledge" rather than collect more certificates.

When asked about the "Tal-Vadya-Kachhari", an ensemble of various percussion instruments like Tabla, Mridangam, Dholak, Kanjira on which the players on their respective instruments play different "parans" and "ukdas", he said it is a "tamasha" because there can never be proper co-ordination or harmony.

Regarding "Tabla-Tarang" in which a percussionist handles about 10 main drums to present a raga composition, he said the "scope of swaras (particularly meend) is limited," and, therefore, not advisable to play.

The standard of music reviews in the country has to improve, according to Prof. Saxena, a recepient of the Gujarat Sangeet Nritya Natya Akademi award. There are very few honest critics, he said adding the rest bow to various pressures from the artistes, organisers of music programmes etc.

Prof. Saxena is a member of AIR audition boards and to a question on the "ruinous" impact of TV recitals, he said, it does in a way, kill the creativity of musicians. In such recitals, he said, besides the time bar, the musicians, main or accompanists, more often do not get the desired response from the audience as everybody is "camera-conscious."

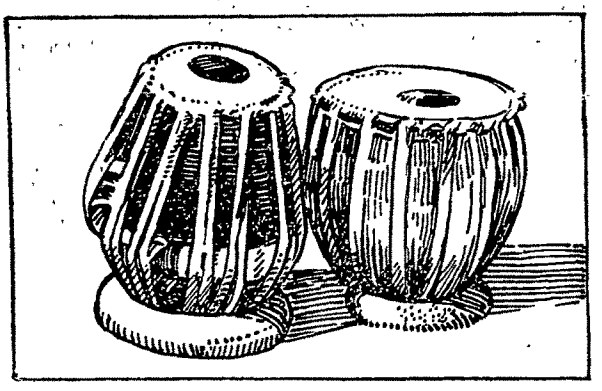

Tuneful Tale Of Tabla

SCHOLARS of music and percussionists have hardly made any efforts to trace the origin of tabla and more often one is led to believe what is passed on in this regard from one generation to another. There appears to be no solid evidence so far as to when exactly this musical instrument was created or designed. It is believed that tabla was first played about 550 years ago.

Prof. Sudhirkumar Saxena, former head of the tabla department of M.S. University of Baroda, Mr. Prabhakar Date, a noted percussionist from Baroda, Mr. Laxman Phulpagare, 'A' class percussionist of AIR (Ahmedabad), and Ustad Rehman Khan, another percussionist who has been on the AIR staff for over 20 years, were unanimous in pointing out one thing —tabla was "born" out of pakhawaj.

This is absolutely true because in the olden times pakhawaj was used for the accompaniment of dhrupad-dhamar singing; the khayal and thumri which followed was presented to the accompaniment of tabla.

According to scholars, a pakhawaj-dhokak duel was organised between Kudau Singh (Kudum Singh) and Khabbe Hussain Dholakia some 650 years ago.

In this duel, it is believed, Kudau Singh triumphed and Khabbe Hussain Dholakia had his thumb slashed when he lost. Later, in a fit of rage, Khabbe Hussain is said to have cut the pakhawaj into two parts and when he saw, to his surprise, that pakhawaj boles could be played on these two parts, he reportedly said "tab bhi bola" which in the course of time became tabla.

By
G. V. MUDHOLKAR

It is also believed that the duel was between Kudau Singh and Siddharkhan Dhadhi, the latter being given credit of making this instrument. Amir Khusro, who lived during Akbar's regime, is also believed to have carved out tabla.

But Prof. Saxena dismisses the "tab bhi bola" aspect and insists that Khabbe Hussain Dholakia and none else is the creator of tabla.

According to him, the duel was organised by one Keshav Prasad Munshi, himself a reputted dholak player in the Banda district of UP then. In such competitions, whosoever had lesser stock of boles was declared defeated.

Mr. P. G. Date says that in ancient times 'tabal jang' was used at the time of war in Arabia. Although this instrument was initially played with sticks, it was played with fingers for religious songs in the course of time. According to him, there is a reference to percussion instruments called "Ballag" and 'Balaga' in the Sumerian and Babilonian civilisation. In the Persian literature, too, one finds names like "Tabal baladi" and "tabal mirgi". Maybe, he says, all these instruments similar to tabla helped in the design of the present-day tabla.

Mr. Laxman Phulpagare believes in the 'Tab bhi bola' theory. But he says this percussion instrument had a different form in the ancient times. The left drum, he said, was straight and not roundish. According to him, wheat flour (aata) was applied on the left drum. It also had no 'shahi' (black portion) earlier. Even now, he says, in Sind - (Pakistan) and Punjab, atta is applied on the dagga before playing it.

Ustad Rehman Khan admitted that his gurus taught him boles rather than the theoretical aspect of tabla. He said that percussionists in the ancient times used 'bade mukh ka tabla , usually of 'Kali char' and 'Kali paanch' Ek' especially for solo recitals

In the present times, however, percussionists use tabla of 'Kali

Tabla comprises two parts. While one drum usually played by right hand is called tabla, Dayan or Madi or Nargha or Dhukkad, the other usually played by the left hand is called Dagga or Bayan or Bhandia.

Tabla is usually made of wood (Sisum, Chandan, Babul, Kathal, Bageisar etc). Although the average height of tabla is one foot it varies according to the pitch. The top of the drums is covered by goatskins. The skin cover is wrapped into leather loops which are stretched over body of the drums by leather braces.

Small cylindrical blocks of wood are inserted between the braces and the outer wall of tabla to match tonal variations The dagga, which in the ancient times, was made of clay, is now made of metal. Some percussionists put lead inside the dagga to get good echo.

Will the form of tabla undergo a further change in future?. Will the exact origin be traced? One can only keep his fingers crossed.

Magic At Their Finger-tips

FOR solo recitals, percussionists either present a mixed fare or adhere to 'boles' of one of the following 'baaj':

Delhi Baaj—Often considered the original baaj. In this, one finds a predominant use of index and its adjoining finger. There are more 'chaant' or 'kinari' boles. The third finger is used while playing "tirakita" Peshkars, quaidas and its paltas are systematically presented in the solo recitals.

Ajrada Baaj—It has more affinity to Delhi baaj. The quaidas etc. are usually rendered in fast laya. At the same time, effort is made to produce sweet sound from the dagga.

Lucknow Baaj—This baaj is famous for its lilting 'chakradars' and is often called Purab Baaj.

Banaras Baaj—Often considered part of Lucknow Baaj. While the accent is equally on the dagga, there are more open beats in this baaj as compared to others. It is chiefly employed for the accompaniment of dance.

Punjab Baaj—The open boles of pakhawaj are modified suitably and gats are mostly played in solo recitals in this baaj.

Farrukhabad Baaj—This baaj is also replete with long nd sweet gats.

All these baajs, it is said, were formed when percussionists of repute settled in the respective places in the country in the course of time. Evidence in this regard is very scanty and much of what has come to us is only that which gurus in the olden times orally related to their selected disciples.

— G.V.M.

Three pillars of the music world

LIKE many institutions in Vadodara, the Music College, too, owes its inception to the Maharaja Sayajirao III. He brought in Ustad Maulabux to begin teaching music in an organised manner as long ago as the late 19th century. Vadodara, therefore, is the first city to have institutionalised the North Indian style of music with blended gharanas.

Stalwarts like Pandit Bhatkhande took keen interest, since 1916, in the development of the institution in teaching music so that a student simultaneously became a good music teacher, a musicologist and a performer of good calibre. In contemporary times, the three gurus who have been instrumental in propagating vocal music as well as tabla teaching are Pt Shiv Kumar Shukla, Pt Madhusudan Joshi and Prof Sudhir Kumar Saxena. Pt Shukla, one of the earliest students of Sri Baburao Ghokle, blossomed under the Bhendi bazar gharana of Ustad Aman Ali Khan of Bombay, whose style of singing was so original and fresh that it created a sensation in the music world.

Pt Shukla not only imbibed his Guru's style, he also added some more melody to it. The sargams in the gharana are unique. He was recognised as a top-notch singer in the late '50s and '60s and considered to be in the same league as Ustad Amir Khan, Ustad Bare Gulam Ali Khan, Vinayak Rao Patwardhan, Narayan Rao Vyas etc. No conference was complete without his presence.

In view of his eminence, Pt Shukla was invited by Smt Hansaben Mehta, the then Vice-Chancellor of M S University, to join the music college as its principal. Pt Shukla gave his heart and soul to the teaching of music and, to a large extent, was responsible for the introduction of the Guru-Shishya parampara. The present Dean, Prof Dwarkanath Bhonsle, was his student and so are a few others who are the current Gurus in the vocal music section of the college.

Prof Sudhir Kumar Saxena

Pt Shukla's compassion and love for his students is evident in the manner in which his students still regard him — not only as the Sangeet Guru, but as the guidng factor in the development of their personality. Vadodara owes a lot to Pt Shukla so far as music education is concerned. He was felicitated by the citizens of the city in 1992.

Prof Sudhir Kumar Saxena, the table maestro, learnt his art from the great Guru Ustad Habibuddin Khan of Ajrada Gharana at Meerut in UP. He joined the Faculty of Performing Arts at Vadodara in 1950 and retired as a professor and Head of the Department in 1983. In his heydays, the professor had the privilege of accompanying on tabla all the masters of instrumental music as well as vocal maestros. A much-sought-after artiste, he could enhance an entire concert by judicious and highly melodic accompaniment. A member of the expert UGC committee awarding fellowships in music and dance, Prof Saxena was a visitng professor of tabla at the Mahatma Gandhi Institute at Mauritus for two years.

If the Music College has made a name for itself in the firmament of classical Indian music, credit goes to Sayajirao III, and says Sarvesh Chandra Mathur, three unsung heroes

Prof Saxena is not only a tabla maestro; he is also a scholar, having published treatises on 'The Art of Tabla Playing', 'Aesthetics of Rhythm' etc. He has a large number of students who are either professional tabla players or are table teachers in various music colleges.

Madhukar Gurav, an excellent table player and reader in the Music College, is keeping the traditions of his Guru alive to a large extent.

Prof Saxena's contribution to the development and spread of tabla education can be gauged by the fact that after vocal music, the tabla class has the maximum number of students. This means that Prof Saxena's efforts in organising tabla teaching is providing gainful employment to hundreds of students after they complete their learning process. Prof Saxena is so humble and such a great Guru that even at the age of 75, he is surrounded by disciples who get constant encouragement from him. He is still following the Guru-Shishya parampara. A person who is loved by all. He was felicitated by students and Swar Vilas last year.

Pt Madhusudan Joshi one of the most respected Guru of vocal music, Pt. Pt Madhusudan Joshi, who graduated in 1936, was the first diploma-holder of the music college. Vadodara has upheld the traditions of the Agra Gharana as Ustad Faiyaz Khan, Ustad Atah Husain Khan, a teacher par excellence, and Ustad Anwar Husain Khan were teachers here. Ustad Atah Husain Khan took Pt Joshi under him as his primary disciple and the student and the Gharana both blossomed.

Pt Joshi's concepts of the raga are so clear that a student can easily understand the finer points of the raga and the bandishes are so much enrapped in the bol and laya that the weight of the bandish is clearly perceivable to a student.

Pt Joshi's prominent discple was the late Pt Madhukar Pendse who, unfortunately, died young. Another well known artist was the late Dinker Kothari whose son Hemant Kothari is still learning from Pt Joshi. Another disciple who has a excellent grasp of the Agra gharana is Rajesh kelkar.

સંસ્કાર નગરીનું ગૌરવ વધારનાર મ્યુઝિક કોલેજના ગુરૂ અને શિષ્યા

વડોદરા, શુક્રવાર

મ્યુઝિક કોલેજ સાથે ગુરૂ અને શિષ્યના નાતે સંકળાયેલા બે કલાકારોનું તાજેતરમાં સન્માન થતાં, મ્યુઝિક કોલેજની સાથે સાથે વડોદરા શહેર અને ગુજરાત રાજ્ય પણ ગૌરવન્વિત બન્યા છે. આ કલાકારો છે. ત્રણ દાયકા બાદ જુલાઈ માસમાં નિવૃત્ત

થઈ રહેલા, વાદ્ય સંગીત વિભાગના અધ્યક્ષ પ્રા. સુધીરકુમાર સક્સેના અને કંઠ્ય સંગીતમાં મોખરે રહી એમ. મ્યુઝિ. ની પદવી મેળવનાર કુ. કિરણ શુકલ જેઓને અનુક્રમે ગુજરાત રાજ્યનો ગૌરવ પુરસ્કાર તથા અખિલ ભારતીય ગઝલ સ્પર્ધાનો પ્રથમ પુરસ્કાર મળ્યો છે.

મીરત યુનિવર્સિટી માંથી અંગ્રેજી સાહિત્ય સાથે બી. ઓ. ની પદવી પ્રાપ્ત કરનાર કુ. સક્સેનાએ દશ વર્ષની નાની વયે અજરાડા ઘરાણાના ગુરૂ સ્વ. હબીબુદ્દીન ખાન પાસેથી તબલાની તાલીમ લેવાનું શરૂ કર્યું હતું. અહીં મ્યુઝિક કોલેજમાં અધ્યાપનકાર્ય સ્વીકારતા પૂર્વે આકાશવાણીના કલકત્તા અને દિલ્હી કેન્દ્રોમાં સ્ટાફ આર્ટીસ્ટ તરીકે ફરજ બજાવી હતી. તેઓએ આકાશવાણીની યુવાન તેજસ્વી કલાકારોની પસંદગી માટેની જયપુરીના અધ્યક્ષ પદે તેમજ ઓડીશનબોર્ડના સભ્ય તરીકે સેવાઓ આપી છે. ૧૯૬૨ના સાંસ્કૃતિક પ્રતિનિધિ મંડળના સભ્ય તરીકે તેઓએ અફઘાનિસ્તાન જપાન અને યુ. એસ. એસ. આર. ની મુલાકાત લીધી હતી. યુ. જી. સી. ની વિઝીટીંગ કમિટિના સભ્યપદે પણ તેઓ રહી ચૂકયા છે.

શુદ્ધ શાસ્ત્રીય તથા ઘરાણાની પરંપરાને વફાદાર રહેવા અને તેમાં બાંધછોડ કરવી પડે તેવા પ્રયોગોથી દૂર રહેતા સક્સેનાએ સંગીતના ક્ષેત્રની કરેલી દીર્ઘ સેવા બદલ રાજ્યની સંગીત- નૃત્ય- નાટય અકાદમીએ તેમને રૂા. ૧૦૦૦નો પુરસ્કાર આપ્યો છે. અને હવે પછી યોજાનાર સમારોહમાં તેમનું સન્માન કરવામાં આવનાર છે. દેશના અનેક મોટા સંગીતકારો તથા નૃત્યકારો સાથે તબલા સંગત કરી ચૂકેલા શ્રી. સક્સેના માને છે કે શ્રોતાઓની રૂચિ તમે જેવી કેળવો તેવી થઈ શકે છે તબલાવાદકનું કામ પૂરક જ છે.

શ્રોતાઓને આકર્ષવા સભાન પ્રયત્નો કરવા કે કશુંક ઉત્તેજક રજૂ કરવું વર્જ્ય છે કલાકારની તે ભૂલ સમાન છે અજરાડા ઘરાણાની તાલીમ આકરી અને કષ્ટ સાધ્ય માનવામાં આવે છે આ ઘરાણાને કલાકાર અન્ય કલાકાર જેવા તબલા વગાડી શકે છે પરંતુ અન્ય કલાકારો માટે અજરાડા ઘરાણાના કલાકાર જેવા તબલા વગાડવાનું મુશ્કેલ છે!

કલાકાર જે વગાડે તે તેણે ગાઈ બતાવવું જોઈએ જેવી સાંગોપાંગ જાણકારી ના આગ્રહ રાખનારા આ પીઢ કલાકાર ૨૪ વર્ષથી આકાશ વાણી" ના પ્રથમ પંકિતના કલાકાર છે અને તેમના તબલાવાદનનો ટુક સમયમાં એક રાષ્ટ્રીય કાર્ય ક્રમ પણ "આકાશવાણી" ઉપરથી રજૂ થવાનો છે રસ-રૂચિ વાળા લોકો મળે તો

તબલાનો સ્વતંત્ર કાર્ય ક્રમ આપવાનું પણ શકય છે તેવું એક પ્રશ્નના જવાબમાં જણાવનાર શ્રી. સક્સેના જૂથ બંધ, શૈા મેનશીપ કે બીજા કાવાદાવાથી અલિપ્ત સાવ અલગારી જીવ જેવા લાગે છે. તેમની પાસેથી તાલીમ પ્રાપ્ત કરનાર કલાકારોએ પણ સારા સારા સ્થાન શોભાવ્યા છે. તાજેતરના વર્ષોમાં

તેમની પાસે તૈયાર થયેલા કલાકારોમાં શ્રી. મધુકર ગુરવ તથા શ્રી. વિક્રમ પાટીલના નામો સહેજે હોઠ પર આવી જાય તેમ છે.

૦૦ કોટા (રાજસ્થાન) ખાતે બીજી વખત યોજવામાં આવેલી બીન ફિલ્મી ગઝલની અખિલ ભારતીય સ્પર્ધામાં કુ. કિરણ શુકલે 'આકાશવાણી' તરફથી ફોર્મ પુરૂ પાડવામાં આવતાં તેમજ આર્યકન્યા લલિતકલા વિદ્યાલયના આચાર્યા કુ. પ્રતિભા પંડિતે પ્રોત્સાહન પૂરૂં પાડતા ભાગ લીધો હતો. પણ બીજા કોઈને વાત નહીંકરેલી. મનમાં દહેશત હતી: ઉર્દૂ જબાન ઉપર કબૂવાળા, ઉત્તર ભારતના સાચ કલાકારો હશે. તેમની સાથેની સ્પર્ધામાં ક્યાંય ગજ ન વાગેતો ? કિરણની રા દહેશત સાવ ખોટી નહોતી પણ પડી ખોટી.

આલાપસાથે દસ મિનીટની ગઝલ રજૂ કરવાની હતી. સામે ગાયન-વાદન-લેખનના ક્ષેત્રના પાંચ નિર્ણાયકોજ નહીં' જાણકાર શ્રોતાઓની વિશાળ મેદની પણ હતી. પંદર મહિલા અને પંદર પુરૂષ કલાકારો હતા. આમાંના કેટલાકે બીજાના કમ્પોઝીશનવાળી રચનાઓ રજૂ કરી જ્યારે કિરણે પોતાનાજ કમ્પોઝીશનવાળી અને જનાબ મખમુદ દહેલવીની લખેલી ગઝલ રજૂ કરી જે રૂા. ૫ હજારનું પ્રથમ ઈનામ અને સ્વ. બેગમ અખ્તર ટોફી લઈ આવી. ગઝલના શબ્દો હતા: "કિસીસે મેરી મંઝીલકા પતા પાયા નહીં જાતા..." આ સ્પર્ધાને મળેલા ઉત્સાહભર્યા આવકારથી પ્રભાવિત થઈ રાજસ્થાન સરકારે પણ રૂા. ૫ હજાર આપવા જણાવતાં હવે પછીની સ્પર્ધામાં પ્રથમ ઈનામ રૂા. ૧૦ હજારનુંહશે. એક વખત આ ઈનામ જીતનાર માટે ફરી સ્પર્ધામાં ભાગ લેવા ઉપર પ્રતિબંધ નથી !

આગ્રા ઘરાણાના જાણીતા કંઠ્ય સંગીતકાર અને મ્યુઝિક કોલેજના ભૂતપૂર્વ આચાર્ય પં. શિવકુમાર શુકલની, પિતા પાસેથી સંગીતની તાલીમ પ્રાપ્ત કરનાર અને ઉર્દૂના વ્યવસ્થિત અભ્યાસ કરનાર સુપુત્રી અગાઉ આકાશવાણી યોજિત સુગમ સંગીત તથા ગઝલ ગાયનની ફાઈનલ ભારતીય સ્પર્ધામાં પ્રથમ સ્થાન મેળવી ચૂકી છે. આકાશવાણીની શાસ્ત્રીય સંગીતની અખિલ ભારતીય સ્પર્ધામાં (૧૯૭૯)માં પણ તેણે પ્રથમ સ્થાન મેળવ્યું હતું. યુ. કે. તેમજ યુરોપના અન્ય દેશોના ગઝલ પ્રેમઓ સમક્ષ કાર્ય ક્રમો આપી સારી વાહવાહ પ્રાપ્ત કરનાર કિરણના ટેક સમયમાં મુંબઈમાં બે કાર્ય ક્રમો છે.

કિરણના કોમળ રણકામાં બેગમ અખ્તર જેવી ગાયકીની છાંટ છે. બેગમ અખ્તરની પરંપરા આગળ વધારવાનો યશ શ્રીમતી શાંતિ હીરાનંદ પછી કિરણને મળે. ભવિશ્ય કહેશે. સુદીર્ઘ સાધના બાદ કેળવાયેલા કંઠનો ઉપયોગ સિનેમા માટે કરવાની તેની ઈચ્છા નથી.

ભારતીય સંગીત ક્ષેત્રના .....

તબલા વાદન આચાર્ય શ્રી. સુધીરકુમાર સકસેના

ભારતીય સંગીત કલા સંસારના સુપ્રસિધ્ધ તબલા વાદનાચાર્ય પંડિત શ્રી સુધીરકુમાર સકસેનાનો જન્મ સને ૧૯૨૩ના રોજ ઉત્તરપ્રદેશના અલિગઢ શહેરમાં થયો હતો.

શ્રી. સુધીર કુમારના પિતા શ્રીનું નામ ઝહાનદ્દ સકસેના તથા માતાશ્રીનું નામ કીષ્ના કુમારી આ પરિવારમાં સંગીત પ્રેમીની અભિરૂચી જન્મ જાતથી જ વ્યાપ્ત હોઇ, શ્રી. સુધીર કુમાર સકસેનાના જીવનમાં સંગીતના ઉચ્ચ સંસ્કારોનું ભાવિ નિર્માણ તેમના પરિવારમાંથી થયું હતું.

શ્રી સુધીરકુમારના માતાશ્રી કીષ્નાકુમારીનો કંઠ બાલ્યાવસ્થા સારો હોવાથી તુલસી, સૂર, મીરા નાનક ઇત્યાદિ ભક્ત કવિઓના ભજન પદ ગાવામાં અતિ પ્રવિણતા ધરાવતાં હતાં અને ઝહાનદ્દ સકસેનાને તબલા વાદન પ્રત્યે વિશેષ અભિરૂચી હોવાથી શ્રી સુધીરકુમાર સકસેનાજીએ તબલા વાદનની પ્રારંભિક સંગીત શિક્ષા તેમના પરમ પ્રિય પિતાશ્રીની નિગરાનીમાં સંચાલિત કરી તબલા વાદન શૈલિનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું.

સુધીરકુમાર પ્રત્યે તેમના માતા પિતાને અત્યંત પ્રેમભાવ હતો અને શિશુ વયથી જ શ્રી સુધીરકુમારને અતિ લાડ પ્યાર કરી વિદ્યાભ્યાસ તથા અન્ય કલાઓનું જ્ઞાન શિક્ષણ શ્રી સુધીરના જીવનમાં કરાવી વિદ્યા આરાધનાને પ્રબળ વિત બનાવી શ્રી સુધીર વિદ્યા અભ્યયન મીરતની કોલેજમાં બી. એ. સુધી કરી વિદ્યા આરાધનાને જીવનમાં પ્રધાન સ્થાન આપ્યું. બી. એ. ના વિદ્યાભ્યાસ સાથે તબલા સાધનાની મહાન લગનને આરાધના બળ બનાવી કલા ક્ષેત્રમા સ્વયં સાધના કરી તબલા કલાના વિવિધ અંગોને જીવનમાં દર્શનિય બનાવી

શ્રી સુધીર કોલેજ જીવનમાં સંગીતના અનેક રંગમંચો ઉપર તબલા વાદનના અનેક પ્રોગ્રામો આપી મિરતની સંગીત પ્રિય જનતાના મન કલાની ભવ્ય સાધનાથી આનંદ રંજીત કરી દીધા. એક દિવસ મિરત સંગીત કલા મંડળમાં સંગીત ગાયન વાદનની ભવ્ય સ્પર્ધાનું આયોજન કરવામાં આવ્યું અને જે સંગીત સ્પર્ધાના નિર્ણાયક તરીકે ભારત વર્ષના વાદન સમ્રાટ ઉસ્તાદ ઝમીરુદ્દીનખાન સાહેબે માન પ્રતીત કર્યું હતું.

આ સંગીત ભવ્ય સ્પર્ધામાં શ્રી. સુધીરનું તબલા વાદન સાંભળી પ્રથમ જ પ્રથી પ્રથમ થયા, અને આ સંગીત સ્પર્ધામાં શ્રી. સુધીરને પ્રથમ કોલેજ જીવનની સંગીત વિજેતી તરીકે ટ્રોફી અને સુધીરને બોલાવી માનસાહેબે કહ્યું કે જો સુધીર આપકી તબલા વાદન કલામેં લયા અદ્ભુત દર્શન હ�ે ઔર આપને તબલા ઉપાસના કીસકી પાસસે કી. શ્રી સુધીર ઉત્તર આપ્યો કે ઉસ્તાદજી મેં તબલાની પ્રારંભિક શિક્ષા માપ પિતાશ્રીની પાસેથી કરી અને અન્ય જ્ઞાન પ્રાપ્તિ આપ જૈસા ગુરૂમહર્ષિના સમાગમમાં આવી કલા સાધનાને જીવનમાં સાન હૈ ઔર ઇસ પ્રધાન બનાવી ત્યાર પછી શ્રી સુધીર તબલા ઉસ્તાદ ઝમીરુદ્દીનખાન સાહેબનું સંગીત શિક્ષણ વિખ્યાત સિતારી તબલા વાદક કલાની ઉચ્ચ કોટીનું શિક્ષણ અધ્યયન ઉસ્તાદ ઝમીરુદ્દીનખાન સાહેબ પાસેથી તબલા વાદનની વિવિધ શૈલિ જે દિલ્લી તબલાબાજ, અજરડા તબલાબાજ, અને કાયદા જે પેશકાર, લગી પરન, ચૌમુખી પરન તબલા સ્વત ત્રણજ, તબલા સંગીત ઇત્યાદિ ભિન્ન ભિન્ન કલાની મહાન આરાધનાને નજર સમક્ષ રાખી વાદન કલા સાધના ઉપર અતિ પરિશ્રમ કર્યું પ્રાપ્ત કર્યું.

ઉસ્તાદ ઝમીરુદ્દીન ખાનને શ્રી. સુધીર ઉપર અતિ પ્યાર હતો જેથી તેઓએ પોતાના તબલાના ગુરૂ તરીકે સુધીરના જીવનમાં તબલાવાદનની અદ્ભુત વાદન પ્રતિભાનું શ્રી. સુધીરના જીવનમાં કલા દર્શન કરાવ્યું શ્રી સુધીરે તેમના જીવનમાં અનેક દેશોના સંગીત સંસ્થાઓ કરી ભારતના અનેક રંગ મંચો ઉપરથી તબલા વાદનની કલાનું ભવ્ય દર્શન કરાવી તબલા વાદન કલા વિદ્વતી તથા જનતા પાંડીત્ય પ્રાપ્તિનું ભાવ રજુથી સંગીત પ્રેમી ભાવિક જનોના મન કલા આરાધનાના દર્શનથી આનંદ રંજીત કરી દીધા સુધીર ભારતીય સંગીત કલા સંસારના આજ એક શ્રેષ્ઠ તબલા વાદન આચાર્ય છે અને તેમની વાદન કલામાં સાધનાનું ભવ્ય દર્શન છે આજ તેઓ સંગીત કોલેજ મરોડાના સુપ્રસિધ્ધ તબલા વાદન આચાર્ય છે શ્રી. સુધીર ભારતના ખ્યાતિ પ્રાપ્ત સંગીત કલાકારો સાથે તબલા સંગત કરેલ છે જે સ્વ. પંડિત ઓમકારનાથજી સ્વ. ઉસ્તાદ હુસેન સાહેબ, સ્વ. વિલાયતખાન સાહેબ, શિવકુમાર શુકલ, શ્રી. ઝાકીરહુસેનખાન ઇત્યાદિ સુપ્રસિધ્ધ સંગીત સ્વામિનો સાથે તબલા સંગત કરી કલાને જીવનમાં અંજર અમર બનાવી છે.

સુધીરની તબલા વાદન શૈલિમાં લયની અજબ સિદ્ધિ તથા હાથોની આંગળીયોમા જાદુના પ્રભાવમાં મંત્ર મુગ્ધ કરવાનું વિશેષ ગુણ છે શ્રી સુધીરજીએ નિરાભિમાની અને અત્યંત ભાવ વિભોર સંગીત ઉપાસક છે અને તબલાની જરીયામાં અભિમાન નથી.

શ્રી સુધીર ભાઇ પણ કલાકાર છે આજે તબલા સંગીત ક્ષે. શ્રી યશવંત ડી. ભટ્ટ સંગીત શાસ્ત્રી ભાવનગર

ક્ષેત્રમાં તેમને અનુકુળ અને પ્રિય પદ પડે છે અને સંગીત સભાર ભર્યું વાતાવરણ કલાની સાધનાથી દર્શનિય બનાવી દે છે જેથી તબલા વાદન સંગીતથી શ્રોતા પણ રસમાં આવી જઈ રાગ રાગિનિના મધુર ઉભરા ભાવનું દર્શન કરાવે છે જે શ્રોતા ગાયક સાથે સારા તબલચી ન હોય તો ગાયક ગમે તેટલું સારૂં ગાતો હોય તે વ્યર્થ વ્યર્થ છે સંગીતમાં આજ તબલાનું સ્થાન અતિ મહત્વનું ગણવામાં આવે છે.

તબલા વિનાનું સંગીત નિરસ અને ભાવના હિન છે. સંગીત કલા જગતમાં તબલા વાદન શૈલી પ્રગતિ કરીને છે અને તબલાની સાધના માનવજીવનમાં વર્ષોજ વર્ષો સાધનામાં વિતાવ્યા પછી જીવનમા સિધ્ધ થાય છે. શ્રી સુધીર આજ અનેક સંગીત સમારંભો, આકાશવાણી, સંગીતની અનેક મહેફીલોમાં તબલા વાદનકલાની સર્વ શ્રેષ્ઠ આરાધનાનું ઉચ્ચ રસ ભાવ દર્શન કરાવી કલા સંગીત જગતમાં એક નામાંકીત તબલા વાદન આચાર્ય તરીકે સર્વ શ્રેષ્ઠ સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું છે

શ્રી સુધીરજીએ સંગીત કલા આલમમાં તબલા વાદન કલાના અસંખ્ય શિષ્યો તૈયાર કરી તબલા વાદન કલાની સંગીત ઝરમને ભારતની દિશાએ પ્રસરાવી કલા સંગીત ઉપાસનાને ઝળહળ બનાવી છે.

શ્રી સુધીર કુમારના તબલા વાદનમાં તાલની ભવ્યતા, લયની સિધ્ધતા, વાદન માધુર્યતા, તથા બોલોની સ્પષ્ટતા આ સર્વ અંગો તેમની તબલા વાદનની આરાધનામાં દર્શનિય છે શ્રી. સુધિરકુમાર સકસેના આજ બારસ વર્ષના સર્વ શ્રેષ્ઠ લય સિધ્ધ તબલા કલાકાર છે અને તેમની વાદનકલામાં કલાનું મધુર ભાવ ગુંજન છે